हिंदी पुस्तक-12

बारहवीं कक्षा के लिए

G5U8A2

ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਪੰਜਾਬ ਸਰਕਾਰ ਦੁਆਰਾ ਮੁਫ਼ਤ ਦਿੱਤੀ ਜਾਣੀ ਹੈ ਅਤੇ ਵਿਕਾਊ ਨਹੀਂ ਹੈ।

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड

साहिबज़ादा अजीत सिंह नगर

© पंजाब सरकार

प्रथम संस्करण : 2020-2021 .... 14,000 प्रतियाँ
दूसरा संस्करण : 2021-2022 .... 13,000 प्रतियाँ

All rights, including those of translation, reproduction and annotation etc., are reserved by the Punjab Government.

सम्पादक मण्डल : डॉ॰ नीरू कौड़ा डॉ॰ सुनील बहल
शशि प्रभा जैन विनोद शर्मा

चेतावनी

1. कोई भी एजेंसी-होल्डर अधिक पैसे लेने के उद्देश्य से पाठ्य-पुस्तकों पर जिल्दबंदी नहीं कर सकता। (एजेंसी-होल्डरों के साथ हुए समझौते की धारा नं. 7 के अनुसार)
2. पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों की जाली/नकली छपाई, प्रकाशन, स्टॉक करना/जमाखोरी या बिक्री आदि करना भारतीय दंड प्रणाली के अंतर्गत गैरकानूनी जुर्म है।
(पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड की पाठ्य-पुस्तकें बोर्ड के 'वाटर मारक' वाले कागज के ऊपर ही मुद्रित की जाती हैं।)

ਇਹ ਪੁਸਤਕ ਵਿਕਰੀ ਲਈ ਨਹੀਂ ਹੈ।

सचिव, पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड, विद्या भवन फेज़-8, साहिबज़ादा अजीत सिंह नगर 160062 द्वारा प्रकाशित तथा मैसर्स राहुल आर्ट एंड प्रैस, जालन्धर द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

स्कूल स्तर के विभिन्न श्रेणियों के लिए पाठ्यक्रमों को संशोधित करना और उन संशोधित पाठ्यक्रमों पर आधारित पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड का प्रमुख उद्देश्य है। इसी उद्देश्य के अन्तर्गत राष्ट्रभाषा हिंदी (वैकल्पिक) विषय के सीनियर सेकंडरी कक्षाओं के पाठ्यक्रम को संशोधित करने और संशोधित पाठ्यक्रम के आधार पर पाठ्य-पुस्तकों के नवीकरण की क्रमिक योजना बनाई गई है।

प्रवेश वर्ष 2007 में ग्यारहवीं श्रेणी के हिंदी विषय के पाठयक्रम और पाठ्य-पुस्तकों को तैयार कर लागू किया जा चुका है। इसी क्रम के अधीन प्रवेश वर्ष 2008 से बारहवीं श्रेणी के पाठ्यक्रम पर आधारित पाठ्य-पुस्तक को तैयार किया गया है।

पुस्तक को तैयार करते समय राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए निर्धारित न्यूनतम अधिगम स्तर का विशेष ध्यान रखा गया है। हस्तीय पुस्तक के 5 भाग है- प्राचीन काव्य, आधुनिक काव्य, निबन्ध भाग, कहानी भाग एवं एकाँकी भाग। पुस्तक में संकलित पाठों के चयन में विशेष सतर्कता बरती गई है। एक ओर विद्यार्थियों के मानसिक एवं बौद्धिक स्तर का ध्यान रखा गया है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति एवं परिवेश के साथ-साथ पंजाब की गौरवमयी पृष्ठभूमि को विशेष स्थान दिया गया है। प्रत्येक पाठ से पूर्व लेखक परिचय एवं पाठ परिचय के साथ पाठ के अन्त में निर्धारित प्रश्न-पत्र की रूपरेखा के आधार पर अभ्यास में प्रश्न सम्मिलित किये गये हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि पुस्तक विद्यार्थियों में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक होगी। फिर भी, पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए क्षेत्र से आए सभी सुझाव बोर्ड द्वारा साभार स्वीकार किये जायेंगे।

चैयरमैन

पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड

ਸਮਾਜਿਕ ਨਿਆਂ, ਅਧਿਕਾਰਤਾਂ ਅਤੇ ਘੱਟ ਗਿਣਤੀ ਵਿਭਾਗ, ਪੰਜਾਬ

विषय—सूची

पृष्ठ संख्या

प्राचीन काव्य

1.	सूरदास	–	विनय के पद	3
		–	वात्सल्य भाव	3
2.	मीराबाई	–	ब्रजभूमि	8
		–	समर्पण	8
		–	सद्‌गुरु महिमा	8
		–	उपदेश	9
3.	बिहारी	–	भक्ति वर्णन	13
		–	सौन्दर्य वर्णन	13
		–	नीति के दोहे	13
4.	गुरु गोबिन्द सिंह	–	वर याचना	16
		–	अकाल उस्तुति	16
		–	साँसारिक नश्वरता	16
		–	भक्ति भावना	16

आधुनिक काव्य

5.	मैथिलीशरण गुप्त	–	सखि, वे मुझसे कह कर जाते	20
6.	जयशंकर प्रसाद	–	सच्ची मित्रता	24
		–	याचना	24
7.	सुमित्रानन्दन पंत	–	दो लड़के	29
		–	सुख–दु:ख	30

8.	हरिवंशराय बच्चन	–	पौधों की पीढ़ियाँ	34
		–	अन्धेरे का दीपक	36
9.	सच्चिदानंद हीरानंद	–	साँप	40
	वात्स्यायन 'अज्ञेय'	–	जो पुल बनायेंगे	40
10.	शिवमंगल सिंह सुमन	–	चलना हमारा काम है	44
		–	मानव बनो, मानव ज़रा	45
11.	गिरिजाकुमार माथुर	–	आदमी का अनुपात	50
		–	पन्द्रह अगस्त	51
12.	धर्मवीर भारती	–	निर्माण योजना	56
13.	डॉ. चन्द्र त्रिखा	–	जुगनू की दस्तक	62
		–	जीने को कुछ मानी दे	62
14.	गीता डोगरा	–	कच्चे रंग	65

निबन्ध भाग

15.	अध्यापक पूर्ण सिंह	–	सच्ची वीरता	70
16.	आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	–	क्या निराश हुआ जाए?	80
17.	विष्णु प्रभाकर	–	अगर ये बोल पाते : जलियाँवाला बाग	88
18.	श्रीमन्नारायण	–	समय नहीं मिला	94
19.	डॉ. संसार चन्द्र	–	शार्टकट सब ओर	102
20.	डॉ. धर्मपाल मैनी	–	गुरु गोबिन्द सिंह	110

कहानी भाग

21.	जयशंकर प्रसाद	–	मधुआ	120
22.	जैनेन्द्र कुमार	–	तत्सत्	129
23.	फणीश्वर नाथ रेणु	–	ठेस	141
24.	डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता	–	उपेक्षिता	150

एकांकी भाग

25.	उदयशंकर भट्ट	–	वापसी	157
26.	जगदीश चन्द्र माथुर	–	रीढ़ की हड्डी	172

प्राचीन काव्य

1. सूरदास

सूरदास भक्तिकाल की सगुणधारा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख भक्त कवि हुए हैं। एक मत के अनुसार इनका जन्म दिल्ली के निकट सीही ग्राम में सन् 1478 ई॰ में हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा उन्हें वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित किया गया था। इनके जन्म से अथवा बाद में अंधे होने के बारे में अलग-अलग मत हैं। सूरदास ने बालकृष्ण की विविध क्रीड़ाओं का जो यथार्थ और मनोहारी वर्णन किया है, उसे देखकर विश्वास नहीं होता कि वह चित्रण एक जन्मांध कवि द्वारा किया गया है।

सूरदास के लिखे तीन ग्रन्थ मिलते हैं : 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी'। इनमें से 'सूरसागर' ही उनका प्रमुख ग्रन्थ है। इसका आधार भागवत् पुराण है। सूर की कविता का प्रधान विषय विनय (भक्ति), श्री कृष्ण की बाल लीला, गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण की प्रेम लीला, गोपी विरह व भ्रमरगीत है। यह ब्रजभाषा की एक अनूठी रचना है।

सूरदास के काव्य में शृंगार और वात्सल्य का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण है। इन्होंने बालकृष्ण की विविध लीलाओं जैसे माखन चोरी, दूध न पीने का हठ, बड़े भाई बलराम की शिकायतें करना, गौएँ चराने जाना तथा चाँद को खिलौने के रूप में लेने आदि का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। शृंगार में इन्होंने वियोग शृंगार में 'मान' और 'प्रवास' को चित्रित किया है। इसमें भी श्री कृष्ण के विरह में गोपियों की प्रेमदशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण है। 'बिनु गोपाल बैरिनी भई कुँजे' और 'निस दिन बरसत नैन हमारे ' में यह दशा अधिक स्पष्ट है। उनकी शब्द योजना में माधुर्य गुण का समावेश है। अलंकारों का प्रयोग काव्य साधक के रूप में हुआ है। कुल मिलाकर सूर की कविता में विश्वव्यापी प्रेम का संदेश है। सूर के पदों के प्रभाव के विषय में किसी ने सत्य ही कहा है :

किधौं सूर कौ सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर कौ पद सुन्यो, तन मन धुनत शरीर।।

हिन्दी साहित्य के इस महान कवि की मृत्यु सन् 1583 ई॰ के लगभग मथुरा के निकट पारसौली नामक ग्राम में हुई।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में महाकवि सूरदास के भक्ति, वात्सल्य व श्रृंगार चित्रण सम्बन्धी पद लिए गये हैं। 'विनय' सम्बन्धी पद में कवि ने कृष्ण की अपार महिमा का गान किया है। जिसकी कृपा से लंगड़ा व्यक्ति पहाड़ों पर चढ़ने का सामर्थ्य पा सकता है – गूँगा बोल सकता है, अंधे को देखने की शक्ति मिल जाती है। उस करुणामय प्रभु की चरण वन्दना की गई है। 'विनय' सम्बन्धी दूसरे पद में भक्त प्रभु से भवसागर पार उतारने की अनुनय-विनय करता है। 'वात्सल्य भाव' के प्रथम पद में भी कृष्ण की बाल लीला का वर्णन है। बाल कृष्ण का माँ यशोदा से न खेलने का आग्रह है, क्योंकि उनका बड़ा भाई बलराम उसे चिढ़ाता है तथा जब भी कृष्ण जी खेलने जाते हैं तो बलराम की देखा-देखी सभी ग्वाल बाल उस पर हँसते हैं। 'वात्सल्य भाव' के दूसरे पद में श्री कृष्ण माँ यशोदा को यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उन्होंने माखन नहीं खाया, ग्वाल बालों ने बलात् ही उसके मुख पर माखन लगाकर माखन चोरी का आरोप उन पर लगाया है। दोनों ही पदों में श्री कृष्ण के बाल रूप का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण है।

विनय पदों में शान्त रस व भक्ति भावना है। वात्सल्य भाव में वात्सल्य रस है। गीति तत्व या गेयता का गुण सभी पदों में है। माधुर्य गुण भी मिलता है।

विनय के पद

चरण कमल बन्दौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय, बार बार बन्दौं तिहिं पाई।।
प्रभु मोरे अवगुन चित न धरौ
समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करौ।।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलोहि नीर भरौ।
जब दोनों मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ।।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत कंचन करत खरो।।
यह माया भ्रम जाल कहावत सूरदास सगरो।
अबकि बेर मोहिं पार उतारो नहिं प्रन जात टरो।।

वात्सल्य-भाव

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहिं खिझत बल भैया।।
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन बहैया।।
अब बाबा कहि कहत नंद को जसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलौं खिसैया।।
पाछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
'सूर' नन्द बलरामहिं धिरक्यो सुनि मन हरख कन्हैया।।

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो।।
मैं बालक बहियन को छोटो छींको केहि बिधि पायो।।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मति की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु उपजि है जान परायो जायो।।
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायो।।

शब्दार्थ

चरण कमल	-	प्रभु के कमल रूपी चरण	खिजावत	-	चिढ़ाना
बन्दौ	-	वन्दना करता हूँ	खिसैया	-	खिसियाकर
राई	-	राजा, स्वामी	धिरक्यो	-	घूसा, झिड़कना
पंगु	-	लंगड़ा	हरख	-	हर्षित होना
गिरि	-	पर्वत	बहियन	-	भुजाएँ
दरसाई	-	दिखाई देता है	बरबस	-	बलात्, जबरदस्ती
मूक	-	गूँगा	लकुटि	-	लाठी
रंक	-	कंगाल, दरिद्र	बिहँसि	-	हँसकर
पाई	-	पाँव, चरण	समदरसी	-	समान भाव से देखने वाला
नार	-	नाला	सुरसरि	-	देवनदी, गंगा
चितवत	-	देखना, ध्यान देना	कंचन	-	सोना

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उतर दो :

1. 'विनय पद' के आधार पर सूरदास की भक्ति भावना को अपने शब्दों में स्पष्ट करें
2. 'खेलन अब मेरी जात बलैया' में श्री कृष्ण खेलने क्यों नहीं जाना चाहते हैं। संकलित पद के आधार पर उत्तर दें।
3. 'जिय तेरे कछु भेद उपजि है जान परायो जायो' पंक्ति में श्री कृष्ण माँ यशोदा से क्या कहना चाहते हैं –'परायो जायो' की व्याख्या करते हुए श्री कृष्ण जन्म की घटना का वर्णन करो।
4. सूरदास ने बाल क्रीड़ा का मनोवैज्ञानिक रूप से कैसे वर्णन किया है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. चरण कमल बन्दौ हरि राई .... तिहिं पाई।।
6. खेलन अब मेरी जात बलैया .... हरख कन्हैया।।

*****

2. मीराबाई

हिंदी के भक्तिकाल में मीरा का स्थान सर्वोपरि है। वे सगुण भाव की उपासिका हैं। मीरा के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में अनेक मत प्रकट किए जाते हैं। एक मत के अनुसार इनका जन्म सन् 1498 में कुड़की या चौकड़ी गाँव (जोधपुर) में हुआ था। इनके पिता का नाम राव रत्न सिंह राठौर था। कहते हैं, बचपन से ही मीरा को भगवान कृष्ण से प्रेम हो गया था। इनका विवाह सोलह वर्ष की आयु में कुंवर भोजराज के साथ हुआ। कुछ समय के बाद भोजराज का देहान्त हो गया। विधवा मीरा ने अपना सारा जीवन भगवान की भक्ति में बिताया। लोक लाज छोड़कर सन्तों की सेवा करने लगी। राजपरिवार के लोगों को यह ठीक न लगा। अन्त में राणा ने उन्हें विष देकर मार डालना चाहा, लेकिन विष अमृत हो गया। अन्त में वह घर बार छोड़कर द्वारिका चली गई। वहाँ सन् 1573 में उनका देहान्त हो गया।

मीराबाई ने गुजराती, ब्रज, राजस्थानी भाषा में पद रचना की है। इन पदों में संगीत की पूरी मधुरता है। भावों की गंभीरता, गेयता, पीड़ा एवं वेदना इनके पदों की विशेषताएं हैं। 'राग गोबिन्द', 'नरसी जी का मायरो', 'गीत गोबिन्द की टीका', 'राग सोरठा' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। निष्कर्षत: मीरा के काव्य में सूर की क्रीड़ा, तुलसी की दृढ़ता और कबीर की रहस्यात्मका के साथ प्रेम का ऐसा पुनीत उन्माद था, जो आज भी पाठकों के हृदय को पिघलाकर नेत्रों के द्वारा अपना महान् प्रभाव छोड़ता है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में मीरा के पद 'ब्रजभूमि', 'समर्पण', 'सद्गुरु महिमा' व 'उपदेश' के अन्तर्गत संकलित हैं। 'ब्रजभूमि' में वृन्दावन की पवित्रता का बखान किया गया है। घर घर तुलसी व ठाकुर जी की पूजा, गोबिन्द जी के दर्शन, यमुना जी का पवित्र जल व दूध और दही का भोजन वृन्दावन के सात्विक जीवन की झलक प्रस्तुत करता है। 'समर्पण' के अन्तर्गत मीरा ने अपने प्रेम की पीड़ा का वर्णन करते हुए अपने प्रियतम की की शय्या गगन-मंडल पर बतलाई है। विरह में व्याकुल मीरा इसकी औषधि के लिए वन-वन में मारी मारी फिर रही है लेकिन कोई उपचार नहीं

हुआ। मीरा के अनुसार अब तो यह रोग उस साँवरे के साथ मिलने पर ही समाप्त होगा। 'सद्गुरु महिमा' में मीरा ने प्रभु के नाम रूपी धन प्राप्त करने की बात कही है। इस नाम रुपी धन को कोई चुरा नहीं सकता। यह तो दिन प्रतिदिन बढ़ता है। इसलिए सत्गुरु की कृपा से मिला हुआ यह अमूल्य धन है। 'उपदेश' में मीरा ने मानव जीवन की श्रेष्ठता का वर्णन किया है। यह जीवन क्षण भंगुर है। राम नाम के बेड़े की सहायता से ही मानव संसार रूपी सागर को पार कर सकता है।

इन पदों में ब्रजभाषा का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। भाषा में आलंकारिकता व चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है। गेय तत्व की प्रधानता है।

ब्रजभूमि

आली म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसन गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासन आप बिराजे, मुगट धर्‌यो तुलसी को।
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।।

समर्पण

हे री मैं तो प्रेम-दिवाणी, मेरो दरद न जाणे कोय।
घायल की गति घायल जाणै, कि जिन लाई होय।
जौहरि की गति जौहरि जाणै, की जिन जौहर होय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगन-मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होय।।

सद्‌गुरु महिमा

पायो जी मैनें राम-रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपणायौ।
जन्म-जन्म की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ।।

उपदेश

नहिं ऐसो जनम बारंबार।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूं पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौ सागर अति जोर कहिये, अनंत ऊंडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान चौसर मंडी चौहटे, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ में रची बाजी, जीत भावै हार।
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासी मीरा लाल गिरधर, जीवणा दिन चार।।

शब्दार्थ

आली	सखी	नीको	अच्छा
फीको	अस्तित्व हीन	लाई होय	लगाई हो, पैदा की हो
जौहर	गुण	सोणा	सोना
गगन मंडल	शून्य, आकाश	गिरधर	गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले श्री कृष्ण जी
हरखि हरखि	उल्लसित होकर	छिन छिन	क्षण-क्षण
बहुरि	पुन :	खेवटिया	मल्लाह
ऊंडी	गहरी, तेज़	चौसर	चौपड़ की बाजी
सार	चौसर की गोटे	सुरत	ईश्वर की स्मृति
भावै	चाहै	परले पार	भवसागर के पार
चौहरे	चौराहे में	मंडी	लगी, बिछी हुई

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दो :

1. मीराबाई ने ब्रज भूमि की पवित्रता व सुन्दरता का कैसे बखान किया है?
2. मीरा के विरह में अलौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं – स्पष्ट करें।
3. मीरा ने 'वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु' में किस अमूल्य वस्तु का वर्णन किया है?
4. पाठ्य-पुस्तक में संकलित पदों के आधार पर मीराबाई की भक्ति भावना एवं विरह का चित्रण करें।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. पायो जी मैंने राम रतन धन पायो ....।
6. आली म्हाने लागै वृन्दावन नीको ....।

*****

3. बिहारी

हिंदी साहित्य की रीतिकालीन कविता में महाकवि बिहारी का नाम सर्वोपरि है। सन् 1595 के आसपास ग्वालियर के निकट बसुवा गोबिन्दपुर में इनका जन्म हुआ। यह जयपुर के महाराजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनके पिता केशवराय जाति के माथुर-चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। जब बिहारी आठ वर्ष के थे, तभी इनके पिता इन्हें आरेछा ले गए, जहाँ हिंदी के प्रसिद्ध कवि केशवराय के पास रहकर बिहारी ने काव्य शिक्षा ग्रहण की। विवाह के पश्चात् यह अपने ससुराल (मथुरा) में रहने लगे।

महाकवि बिहारी ने जयपुर के महाराजा जयसिंह के आग्रह पर 'बिहारी सतसई' की रचना की। इसमें सात सौ से अधिक दोहे हैं। बिहारी-सतसई मुख्यत:शृंगार रस का ग्रन्थ है, यद्यपि कुछ दोहे नीति, भक्ति, वैराग्य, ज्योतिष आदि पर भी है। उनका अनुभाव वर्णन तो देखते ही बनता है। बिहारी के दोहों के प्रभाव के विषय में एक काव्य मर्मज्ञ ने तो यहाँ तक कह दिया है –

सतमैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखने में छोटे लगें, घाव करैं गम्भीर।।

बिहारी के दोहों में ब्रज भाषा की स्वाभाविकता के साथ-साथ आलंकारिकता का गुण भी है। इसमें लाक्षणिकता, सामासिकता एवं चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है। उनकी शैली मुक्तक है। उनकी ब्रज धारावाहिक, साहित्यिक तथा व्याकरणानुकूल है। इसमें अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि का भी सुन्दर प्रयोग है।

वृन्दावन में सन् 1663 के लगभग इनका निधन हो गया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में बिहारी के भक्ति, सौन्दर्य तथा नीति सम्बन्धी दोहे लिए गए हैं। भक्ति सम्बन्धी दोहों में कहीं राधा नागरि से भव-बाधा हटाने की विनती की गई है। सौन्दर्य वर्णन में नारी अंगो की कोमलता तथा आभूषणों से सुसज्जित नारी सौन्दर्य का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण है। नीति सम्बन्धी दोहों में बड़ों की भूल को न देखने, प्यास बुझाने वाले लघु से जलाशय

को भी सागर से बड़ा बताने तथा गुणों के महत्व को दर्शाया गया है। बिहारी के इन सभी दोहों में ब्रज भाषा का प्रसाद गुण युक्त है। इसके अतिरिक्त भाव पूर्णता, संक्षिप्तता, अनुभूति की गहनता, ध्यवन्यात्मकता तथा चित्रांकन क्षमता के गुण विशेष रूप से इन दोहों में मिलते हैं। दोहों में अनुभाव वर्णन की सुन्दरता देखने को मिलती है। मुक्तक शैली के ये उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

भक्ति वर्णन

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परैं, स्यामु हरित-दुति होइ।।

जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन कांचै नाचै वृथा, सांचे रांचै राम।।

सौन्दर्य वर्णन

सोहत औढ़ें, पीत पटु, स्याम सलोने गात।
मनौ नीलमनि सैल पर, आतपु परयौ प्रभात।।

कहत सबै बेंदी दिए अंक दस गुनौ होत।
तिय लिलार बेंदी दिये अगनित बढतु उदोत।।

नीति के दोहे

बड़े न हूजै गुनन बिन, विरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सौ कनक, गहनो गढ़यो न जाय।।

अति अगाधु, अति औथरौ, नदी, कूपु सरु बाइ।
सौ ताकौ सागरू जहाँ जाकी प्यास बुझाइ।।

जगत जनायौ जिहिं सकल सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँख न देखी जाहिं।।

घर घर डोलन दीन ह्वै जन जन याचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय।।

बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाइ।
घटत घटत पनि ना घटै, बरू समूल कुम्हिलाइ।।

मीत न नीति गलीत हौ, जो धरियै धन जोरि।
खाए खरचैं जौ बचैं, तो जोरियै करोरि।।

गुनी गुनी सबकै, कहैं, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरू अरकतैं, अरक-समानु उदोतु।।

शब्दार्थ

राँचै		मिलता है	लौने-सिलौने,		सुन्दर
झाँई	(i)	परछाहीं	भव बाधा	-	साँसारिक दु:ख
	(ii)	झाँकी	तिय लिलार	-	स्त्री के माथे पर
	(iii)	ध्यान			
स्यामु	(i)	श्यामवर्ण वाले श्री कृष्ण	उदोत	-	सौन्दर्य
	(ii)	श्री कृष्ण चन्द्र	औथरो	-	उथला, कम गहरा
	(iii)	पातक, दु:ख	अरक	-	सूर्य
हरित दुति	(i)	हरे रंग वाला,	कनक	-	सोना, धतूरा
	(ii)	हरा भरा, प्रसन्न वदन	विरुद	-	यश
	(iii)	हत प्रभ, तेजहीन			

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दो :

1. बिहारी के भक्ति परक दोहों में श्रीकृष्ण के किस स्वरूप का चित्रण किया गया है? वर्णन करें।
2. बिहारी के भक्ति परक दोहों की विशेषताएँ अपने शब्दों में लिखें।
3. बिहारी के सौन्दर्य चित्रण में श्री कृष्ण की तुलना किससे की गई है?
4. बिहारी के गुणों के महत्व को बड़प्पन के लिए आवश्यक बताते हुए क्या उदाहरण दिया है। स्पष्ट करें।
5. बिहारी के अनुसार लालची व्यक्ति का कैसा स्वभाव होता है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. मेरी भव-बाधा हरौ .... दुति होइ।
7. अति अगाधु .... प्यास बुझाई।

*****

4. गुरु गोबिन्द सिंह

गुरु गोबिन्द सिंह हिंदी साहित्य के मध्य काल के प्रमुख भक्त एवं वीर कवि हुए हैं। सिक्खों के दसवें गुरु श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म 22 दिसम्बर सन् 1666 ई० को पटना नगर में हुआ। आप नौ वर्ष की आयु के थे, जब इनके पिता गुरु तेग बहादुर जी ने दिल्ली में अपना बलिदान दिया। गुरु गोबिन्द सिंह जी का जीवन त्याग का अनुपम उदाहरण है। आपके चारों पुत्रों ने अन्याय का सामना करते हुए प्राणों का बलिदान दिया। गुरु जी के अनुयायियों में हिन्दू, मुसलमान दोनों धर्मों के मानने वाले थे। आपने अन्याय के विरुद्ध युद्ध किया। धर्म एवं मानवता की रक्षा के लिए आपने 'खालसा पंथ' की स्थापना की।

गुरु जी की साहित्यिक रचनाएँ 'दशमग्रन्थ' में संकलित है। इनमें 'जाप साहिब', 'अकाल उस्तुति', 'विचित्र नाटक', 'चण्डी चरित्र', 'चण्डी दी वार' और गिआन प्रबोध आदि प्रसिद्ध हैं। छन्दों की विविधता, भाषा की ओजस्विता और कल्पना की मौलिकता इनकी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनके काव्य में 'वीर रस' और 'शान्त रस' दोनों का समावेश है। राष्ट्रीय जागरण की कविता में गुरु जी का विशेष स्थान है। गुरु गोबिन्द सिंह स्वयं तो कवि थे ही, इनके दरबार में बावन (52) कवि भी सुशोभित थे। खेद है कि इन कवियों द्वारा रचित साहित्य का बड़ा भाग युद्ध यात्राओं में सिरसा नदी की भेंट हो गया। 7 अक्तूबर, सन् 1708 में गुरु जी ने शरीर त्याग दिया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में गुरु गोबिन्द सिंह जी के कवित एवं सवैये शामिल किये गये हैं। इनमें वर-याचना, अकाल उस्तुति, साँसारिक नश्वरता व भक्ति भावना प्रकट होती है। 'वर याचना' सवैया गुरु जी का प्रसिद्ध सवैया है। इस में गुरु जी ने शुभ कर्मों के लिए तत्परता से लड़ने व अत्याचार व अन्याय के विरुद्ध अन्तिम श्वास तक युद्ध भूमि में ही प्राण अर्पण करने का वर माँगा है। 'अकाल उस्तुति' में गुरु जी ने अकाल पुरुष के निर्गुण, निराकार रूप का वर्णन किया है। रूप, रंग, जन्म, मरण से रहित वह ब्रह्म सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। 'साँसारिक नश्वरता' कवित्त में गुरु जी ने मानव को संसार के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराया है। संसार में पद, मान, धन, दौलत, वैभव व ऐश्वर्य क्षण भंगुर हैं। बड़े-बड़े योगी, राजा महाराजा, योद्धा व बड़े बड़े अभिमानी सभी को एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। 'भक्ति भावना' में कवि ने ईश्वर को सर्वपालक के रूप में काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भोग आदि से रहित बताया है। वह प्रभु सृष्टि के हर प्राणी का पोषक है।

गुरु जी ने मात्रिक छन्द, कवित्त और सवैये का अधिक प्रयोग किया है। 'वर याचना' में वीर रस तथा 'भक्ति भावना में' शान्त रस का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। भाषा सामान्य है। शैली में प्रवाह है।

वर याचना

देह सिवा बर मोहि इहै, सुभ कर्मन ते कबहूँ न टरों।
न डरों अरि सों जब जाइ लरों, निसचे करि अपनी जीत करों
अरु सिख हों अपने ही मन को, इह लालच हउ गुन तउ उचरों।
जब आवकी अउध निदान बनै, अति ही रन मैं तब जूझ मरों।।

अकाल उस्तुति

रूप राग न रेख रंग, न जनम मरन बिहीन।
आदि नाथ अगाध पुरख, सुधरम करम प्रबीन।
जन्त्र मन्त्र न तन्त्र जाको, आदि पुरख अपार।
हसत कीट बिखै बसै, सब ठउर मै निरधार।।

साँसारिक नश्वरता

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े-बड़े छत्रधारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौ चलत हैं।
बड़े-बड़े राजन के दाबत फिरत देस,
बड़े-बड़े राजनि के दर्प को दलत हैं।
मान से महीप औ दिलीप के से छत्रधारी,
बड़ो अभिमान भुज दंड को करत हैं।
दारा से दिलीसर, दर्जोधन से मानधारी,
भोग-भोग भूम अन्त भूम मै मिलत हैं।।

भक्ति भावना

काम न क्रोध न लोभ न मोह न रोग न सोग न भोग न भै है।
देह बिहीन सनेह सभो तन, नेह बिरकत अगेह अछै है।
जान को देत अजान को देत, जमीन को देत जमान को दै है।
काहे को डोलत है तुमरी सुधि, सुन्दर सिरी पदमा पति लै है।।

शब्दार्थ

सिवा	-	पारब्रह्म की शक्ति	सिख हों	-	शिष्य
हउ	-	मैं	तउ	-	तेरे
उचरों	-	उच्चारण करुँ	आव	-	आयु
अउध	-	अवधि	निदान बनै	-	पूरी हो जाए
अति ही	-	खूब, पूरी तरह	सिउ	-	से
रेख	-	रेखा, आकृति	बिखै	-	बीच
ठउर	-	स्थान	अगेह	-	बिना घर के
अछै	-	अक्षय, जो कभी नष्ट नहीं होता	जमान	-	सृष्टि
पदमा पति	-	परमात्मा, लक्ष्मी पति, भगवान विष्णु			
आसनु	-	योग के आसन	मानधारी	-	अभिमानी
मान	-	एक राजा	दिलीप	-	एक राजा
भुजदण्ड	-	राजशक्ति, भुजाओं की शक्ति			
दारा से दिलीसर	-	दिल्ली के बलवान शासक			

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दो :

1. 'गुरु गोबिन्द सिंह' ने वर याचना के अन्तर्गत क्या वर माँगा है?
2. 'अकाल उस्तुति' में गुरु जी ने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन कैसे किया है?
3. गुरु जी ने 'साँसारिक नश्वरता' के अन्दर किन-किन राजा, महाराजा, अभिमानी तथा बलि पुरुषों के उदाहरण दिए हैं, वर्णन करें।
4. 'भक्ति भावना' ने गुरु जी ने मानव को प्रभु पर विश्वास रखने व अडिग रहने के लिए क्या सन्देश दिया है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. काम न क्रोध न लोभ न मोह .... पति लै है।।
6. देहि सिवा बर मोहि इहै ....जूझ मरों।।

*****

आधुनिक काव्य

5. मैथिलीशरण गुप्त

श्री मैथिलीशरण गुप्त हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के द्विवेदी युग के प्रमुख कवि हुए है। इनका जन्म सन् 1886 ई० में चिरगाँव ज़िला झाँसी में हुआ। इन्हें काव्य रचना की प्रेरणा तथा राम भक्ति अपने पिता रामचरण जी से प्राप्त हुई थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से जिन कवियों ने खड़ी बोली को कविता का माध्यम बनाया, उनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम प्रमुख है। गुप्त जी ने संस्कृत, हिंदी तथा बंगला साहित्य का व्यापक अध्ययन घर पर ही किया। गुप्त जी की सबसे पहली पुस्तक 'रंग में भंग' 1909 में प्रकाशित हुई। 1910 में 'जयद्रथ वध', 1912 में 'भारत भारती', 1932 में 'साकेत' रचनाएँ सामने आईं। 'साकेत' काव्य पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक से उन्हें सम्मानित किया गया। आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें डी. लिट की मानद उपाधि से सम्मानित किया और भारत सरकार ने 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया। 1960 में वे बिहार राष्ट्र भाषा परिषद के आठवें वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष थे।

गुप्त जी की प्रतिभा का विकास केवल काव्य क्षेत्र में ही नहीं हुआ, उन्होंने अनुवाद कार्य भी किया। उनकी रचनाओं का आधार पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानक रहे। अतीत के उन आख्यानों को उन्होंने आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'राम' आदि पात्रों में देवत्व की प्रतिष्ठा के स्थान पर मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा की। उन्होंने नारी को लोक सेविका तथा स्वाभिमानिनी के रूप में प्रस्तुत किया। उपेक्षित नारी पात्रों उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया, कैकेयी को नए रूप में पेश किया। सांस्कृतिक चेतना के कारण गुप्त जी को 'भारतीय संस्कृति का आख्याता' तथा राष्ट्रीय चेतना के कारण उन्हें 'राष्ट्रकवि' कहा गया है। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं –

काव्य ग्रन्थ : रंग में भंग, भारत भारती, जयद्रथ वध, साकेत, शकुन्तला आदि।

मौलिक रचनाएँ : तिलोत्तमा, चन्द्रहास, किसान, अनघ, पंचवटी, स्वदेश संगीत, गुरुकुल,

झंकार, यशोधरा, द्वापर, मंगलघट, नहुष, काबा और कर्बला, पृथ्वी पुत्र, हिडिम्बा, जयभारत, राजाप्रजा, विष्णु प्रिया, उच्छ्वास आदि ।

अनूदित रचनाएँ : विरहिणी ब्रजांगना, पलासी का युद्ध, मेघनाद वध, स्वप्न वासवदत्ता, रुबाइयात उमर खैयाम, वीरांगना आदि।

सन् 1964 में आपका देहान्त हो गया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में राष्ट्रीय चेतना के महान् कवि गुप्त जी की कविता 'सखि वे मुझसे कहकर जाते' 'यशोधरा' खंडकाव्य से ली गई है। इसमें कवि ने सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) की पत्नी यशोधरा की पीड़ा को व्यक्त किया है। सिद्धार्थ संसार के दुःखों के निर्वाण के लिए, मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनी प्रिय पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को छोड़ जंगलों में चले जाते हैं। यशोधरा को लगता है कि उसके पति ने एक क्षत्राणी की धीरता, त्याग और साहस को नहीं पहचाना और उसे मोक्ष मार्ग में बाधक बनने वाली एक सामान्य भावुक अबला नारी समझा। गुप्त जी की यह कविता उनकी नारी विषयक धारणा को भी व्यक्त करती है- यशोधरा का यह उपालम्भ समस्त मानव जाति के सामने एक प्रश्न है- नारी के महत्व को समझने का।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते

सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना;
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।
हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा;
रहे स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।
नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।
जायें, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दु:ख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से?

आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।
गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे।
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते गाते?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।।

('यशोधरा' से)

शब्दार्थ

पथ-बाधा	-	रास्ते की रुकावट	सदय	-	दयालु
उपालम्भ	-	उलाहना, शिकायत	भाते	-	अच्छे लगना
अपूर्व	-	जो पहले न हो	पण	-	दाँव

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दो :

1. 'सखि ने मुझसे कहकर जाते' कविता में यशोधरा को किस बात का दुःख है?

2. 'सखि वे मुझसे कहकर जाते' कविता का केन्द्रीय भाव अपने शब्दों में लिखो।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

3. नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गए तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

*****

6. जयशंकर प्रसाद

श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् 1889 में वाराणासी के सुंघनीसाहू नाम के वैश्य परिवार में हुआ। इनकी आयु केवल 12 वर्ष की थी जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तथा 15 वर्ष की अवस्था में इनकी माता की मृत्यु हो गई थी और फिर बड़े भाई का निधन हो गया। इन विषम परिस्थितियों के कारण वे क्वींस कालेज में अधिक देर तक अपनी पढ़ाई जारी न रख सके। 17 वर्ष की आयु में ही इन पर सारे परिवार का उत्तरदायित्व आ पड़ा। इसी बीच गृह कलह के कारण व्यवसाय को भी धक्का लगा और इनका परिवार ऋण के भारी बोझ से दब गया।

आपका साहित्य जगत में बचपन से ही प्रवेश हो गया। प्रसाद जी ने 9 वर्ष की अल्पायु में 'कलाधर' नाम से एक सवैया की रचना की थी। आरम्भ में वे ब्रजभाषा में रचना करते रहे, बाद में खड़ी बोली की ओर आकर्षित हुए। प्रसाद जी की आरम्भिक रचनाएँ 'इन्दु' मासिक पत्र में प्रकाशित होती रहीं। 1918 ई. में 'चित्राधार' नाम से उनका प्रथम संग्रह प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा संग्रह था –'कानन कुसुम'। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास तथा शोधात्मक निबन्ध भी लिखे थे। उन्होंने भारतीय अतीत संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रीयता जगाने और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रति विशेष प्रयास किए। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :

काव्य रचनाएँ - चित्राधार, कानन कुसुम, प्रेमपथिक, करुणालय, महाराणा का महत्व, झरना, लहर, आँसू और कामायनी।

नाटक - सज्जन, राज्य श्री, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास - कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)

कहानी संग्रह - छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी तथा इन्द्रजाल।

निबन्ध संग्रह - काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध

प्रसाद जी मुख्यत: प्रेम और सौन्दर्य के कवि है, वे छायावाद के उन्नायक रहे हैं। उनकी रचना 'कामायनी' हिंदी साहित्य का गौरव है। इसी पर प्रसाद जी को 1937 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में 'मंगलप्रसाद पारितोषिक' से सम्मानित किया था। सन् 1937 में प्रसाद जी का देहान्त हो गया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में प्रसाद जी की दो रचनाएँ सकंलित हैं :-

1. **सच्ची मित्रता :** यह कविता प्रसाद जी द्वारा रचित 'प्रेम पथिक' से उद्धृत है। कवि का कथन है कि आज के युग में सच्चे मित्र की प्राप्ति नितान्त दुर्लभ है। मित्रता के नाम पर मात्र स्वार्थ की पूर्ति व शिष्टाचार का निर्वाह ही होता है। सच्चा प्रेम करने वाला मित्र तो सौभाग्यशाली लोगों को ही मिलता है जिससे उनका जीवन धन्य हो जाता है। कवि ने अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में आदर्श मैत्री के महत्व को स्वीकारा है।

2. **याचना :** इस कविता में कवि का आशावादी दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता है। कवि इस कविता के माध्यम से हमें यह प्रेरणा देता है कि जीवन में हमें कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वर के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। जीवन रूपी राह में चाहे फूल बिछे हों या काँटें अर्थात् सुख-दु:ख की धूप-छाँव में ईश्वरीय प्रेम कभी विस्मृत नहीं होना चाहिए।

सच्ची मित्रता

कहाँ मित्रता, कैसी बातें? अरे कल्पना है सब ये
सच्चा मित्र कहाँ मिलता है? - दुखी हृदय की छाया-सा।
जिसे मित्रता समझ रहे हो, क्या वह शिष्टाचार नहीं?
मुँह देखे की मीठी बातें, चिकनी-चुपड़ी ही सुन लो।
जिसे समझते हो तुम अपना मित्र भूल कर वही अभी
जब तुम हट जाते हो, तुमको पूरा मूर्ख बनाता है।
क्षण भर में ही बने मित्रवर अंतरंग या सखा समान
प्रिय हो, 'प्रियवर' हो सब तुम हो, काम पड़े पर परिचित हो।
कहीं तुम्हारा 'स्वार्थ' लगा है, कहीं 'लोभ' है मित्र बना
कहीं 'प्रतिष्ठा' कहीं 'रूप' है - मित्ररूप में रंगा हुआ।
हृदय खोलकर मिलने वाले बड़े भाग्य से मिलते है।
मिल जाता है जिस प्राणी को सत्य प्रेममय मित्र कहीं।
निराधार भवसिन्धु बीच वह कर्णधार को पाता है
प्रेम-नाव खेकर जो उसको सचमुच पार लगाता है।

('प्रेम-पथिक' से)

याचना

(1)

जब प्रलय का हो समय, ज्वालामुखी निज मुख खोल दे,
सागर उमड़ता आ रहा हो, शक्ति-साहस बोल दे,
ग्रह गण सभी हों केन्द्रच्युत, लड़कर परस्पर भग्न हों,
इस समय भी हम हे प्रभो ! तब पद्म-पद में लग्न हों।

(2)

जब शैल के सब शृंग विद्युद्-वृन्द के आघात से

हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से,
जब घिर रहे हों प्रलय-घन अवकाश-गत आकाश में
तब भी प्रभो ! यह मन खिंचे तव प्रेम-धारा-पाश में।

(3)

जब छोड़कर प्रेमी तथा सन्मित्र सब संसार में,
इस घाव पर छिड़कें नमक, हो दु:ख खड़ा आकार में,
करुणानिधे ! हों दु:ख सागर में कि हम आनन्द में,
मन-मधुप हो विश्वस्त-प्रमुदित तब चरण-अरविन्द में।

(4)

हम हों, सुमन की सेज पर या कण्टकों की बाड़ में,
पर प्राणधन ! तुम छिपे रहना इस ह्रदय की आड़ में,
हम हों कहीं इस लोक में, उस लोक में, भू-लोक में।
तब प्रेम-पथ में ही चलें, हे नाथ ! तब आलोक में।

शब्दार्थ

अन्तरंग	-	ह्रदय से परिचित	कर्ण धार	-	पार लगाने वाला
भव सिन्धु	-	संसार रूपी समुद्र	ग्रहगण	-	नक्षत्र
केन्द्रच्युत	-	स्थान से हटे हुए	परस्पर	-	एक दूसरे से
भग्न	-	छूटे हुए	पद्म-पद	-	चरण कमल
सैल श्रृंग	-	पर्वत की चोटियाँ	विद्युत-वृन्द	-	बिजली का समूह
व्याघात	-	विघ्न, प्रहार	अवकाश	-	खाली
प्रेमधारा पाश	-	प्रेम के बन्धन में	सन्मित्र	-	सु-मित्र, अच्छे मित्र
करुणानिधे	-	हे करुणा के भण्डार	मधुप	-	भँवरा
प्रमुदित	-	प्रसन्न	प्राण धन	-	स्वामी

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 40 शब्दों में लिखो :-

1. मित्रता और शिष्टाचार में प्रसाद जी ने क्या अन्तर बतलाया है?
2. 'सच्ची मित्रता' क्या है? प्रस्तुत कविता के माध्यम से व्यक्त करें।
3. 'याचना' कविता में कवि ने प्रभु से क्या वरदान माँगा है?
4. प्राकृतिक आपदाओं के समय हमारी मनोदशा कैसी होनी चाहिए?
5. 'याचना' कविता में जयशंकर प्रसाद ने ईश्वर को किन-किन विशेषणों से अलंकृत किया है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :-

1. कहीं तुम्हारा 'स्वार्थ' लगा है .... मित्र रूप में रंगा हुआ।
2. हम हों सुमन की सेज पर .... तब आलोक में।

*****

7. सुमित्रानन्दन पन्त

'प्रकृति-पुत्र' और 'सुकुमार कल्पना के कवि' कहे जाने वाले श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी का जन्म अल्मोड़ा ज़िले के कौसानी नामक गाँव में सन् 1900 में हुआ। इनके पिता का नाम पं. गंगादत्त व माता का नाम सरस्वती देवी था। जन्म के कुछ समय बाद ही इनकी माता जी का देहान्त हो गया। इनकी शिक्षा राजकीय हाई स्कूल आल्मोड़ा तथा जयनारायण हाई स्कूल बनारस में हुई। उन्होंने बनारस के इसी स्कूल से सन् 1919 में मैट्रिक पास की और फिर इलाहाबाद के 'म्योर सैंट्रल कॉलेज' में भर्ती हुए। लेकिन सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े और पढ़ाई छोड़ दी। फिर पन्त जी प्रयाग में रहकर स्वाध्याय व काव्य रचना करने लगे।

पन्त जी की काव्य चेतना निरन्तर विकसित व व्यापक होती गई। इनके काव्य विकास को मुख्यत: तीन सोपानों में बाँटा जाता है। प्रथम सोपान में 'वीणा', 'ग्रन्थि' 'पल्लव' तथा 'गुंजन' रखे जाते हैं। यहाँ कवि की छायावादी धारणा देखने को मिलती है। दूसरे सोपान में 'युगान्त' 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' काव्य संग्रह रखे जाते हैं। यहाँ साम्यवादी विचारधारा देखने को मिलती है। तीसरे सोपान की रचनाओं में 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' 'उत्तरा' 'लोकायतन' 'चिदम्बरा' 'कला और 'बूढ़ा चाँद' आदि नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ कवि का आध्यात्मिक एवं मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ। इन्हें 1961 में 'कला और बूढ़ा चाँद' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा इसी वर्ष इन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1964 में ही इन्हें 'लोकायतन' प्रबन्ध काव्य पर सोवियत भूमि की ओर से 'प्रथम नेहरू पुरस्कार' प्राप्त हुआ। सन् 1964 में ही इन्हें 'चिदम्बरा' काव्य संग्रह पर भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से एक लाख रुपए का नकद पुरस्कार मिला। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डी. लिट्' की मानद उपाधि प्रदान की थी।

पन्त जी ने मुक्तक एवं प्रबन्ध रचना के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं की भी रचना की। 1950 से 1957 तक आकाशवाणी के परामर्शदाता रहते हुए काव्य-रूपकों की भी रचना की। पन्त जी की उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त अन्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है -

काव्य संग्रह - उच्छ्वास, ग्रन्थि, अतिमा, वाणी, किरण-वीणा, पौ फटने से पहले, गीत हंस, खादी के फूल, पुरुषोत्तम राम।

नाटक - ज्योत्सना।

काव्य रूपक - रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण तथा अतिमा नामक संग्रह।

कहानी - पाँच कहानियाँ।

आत्मकथा - साठ वर्ष : एक रेखांकन

उपन्यास - हार

काव्य अनुवाद : मधुज्वाल (उमर खैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद)

निबन्ध तथा आलोचना - शिल्प और दर्शन, छायावाद, कला और संस्कृति आदि।

पन्त जी की काव्य शैली में मधुरता तथा कोमलता का अपूर्व संगम है। इन्होंने खड़ी बोली को अनुपम माधुर्य दिया। सन् 1977 में हिन्दी साहित्य का यह अनुपम नक्षत्र साहित्य गगन से विलीन हो गया।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में पन्त जी की दो कविताएँ 'दो लड़के' और 'सुख दु:ख' ली गई हैं। **'दो लड़के'** पन्त जी की प्रसिद्ध रचना 'युगवाणी' से ली गई है। इसमें कवि ने दो लड़कों की जहाँ स्वाभाविक नटखट और फुर्तीली छवि को उभारा है, वहाँ समाज के अभावग्रस्त वर्ग की ओर संकेत किया है जिन्हें जीवन के पूर्ण साधन उपलब्ध नहीं हैं। कवि चाहता है कि यहाँ मानव समान हो और ऐसी आदर्श मानवता संसार में हो जाए। मानव का साम्राज्य मानव के कल्याण के लिए हो - न कि शोषण के लिए। कविता में कुछ प्रगतिवादी स्वर भी है। कवि रक्त-माँस से बने इन्सान की मंगल कामना चाहता है-'दो लड़के' पन्त जी की महत्वपूर्ण रचना है। भाषा में - चित्रात्मकता है। तत्सम् शब्दों का प्रयोग भी है।

'सुख दु:ख' दूसरी कविता है - इसमें पन्त जी का जीवन दर्शन झलकता है - जिस प्रकार रात्रि की नीरवता के बाद सुबह आती है, चारों ओर प्रकृति का रंग, ध्वनियाँ बिखर जाती हैं उसी प्रकार दु:ख के सन्नाटे के बाद सुख की चहल-पहल कितनी भली लगती है। जहाँ दु:ख की अति जीवन को तोड़ देती है, वहाँ अतिसुख भी संसार की पीड़ा में वृद्धि करता है। जिस प्रकार विरह-मिलन, साँझ और प्रभात का मेल है उसी प्रकार अश्रु और मुस्कान तथा दु:ख और सुख का संगम ही यह सृष्टि है। पन्त जी की भाषा भावों के अनुकूल है। कविता में गीति तत्व विद्यमान है - सुख दु:ख को पन्त जी ने अत्यन्त दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। मानवीकरण अलंकार का प्रयोग भी है।

दो लड़के

मेरे आँगन में, टीले पर है मेरा घर,
दो छोटे-से लड़के आ जाते हैं अक्सर,
नंगे-तन, गदबदे, साँवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले - पर फुर्तीले !

जल्दी से, टीले के नीचे, उधर उतर कर
वे चुन ले जाते कूड़े से निधियाँ सुन्दर
सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली।

मासिक-पत्रों के कवरों की: और, बन्दर से
किलकारी भरते हैं, खुश हो-हो अन्दर से।
दौड़ पार आँगन के फिर हो जाते ओझल
वे नाटे छह सात साल के लड़के माँसल।

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन-मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन।
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
.रोम-रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे।

अस्थि-माँस के इन जीवों का ही यह जग घर,
आत्मा का अधिवास न यह, वह सूक्ष्म अनश्वर !
न्योछावर है आत्मा नश्वर रक्त-माँस पर,
जग का अधिकारी है वह, जो है दुर्बलतर।

वह्नि, बाढ़, उल्का, झंझा की भीषण भू पर
कैसे रह सकता है कोमल मनुज कलेवर !
निष्ठुर है जड़ प्रकृति, सहज भंगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन !

क्यों न एक हों मानव मानव सभी परस्पर।
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर?

जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
मानव का साम्राज्य बने, मानव हित निश्चय।

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित,
रक्त माँस की इच्छाएँ जन की हों पूरित।
मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें मानव ईश्वर !
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर?

('युगवाणी से)

सुख-दुःख

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
मैं नहीं चाहता चिर-दुःख,
सुख-दुःख की खेल-मिचौनी,
खोले जीवन अपना मुख।

सुख-दुःख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरन :
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

जग पीड़ित है अति-दुःख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से;
मानव-जग में बंट जावें,
दुःख-सुख से औ, सुख दुःख से

अविरत दुःख है उत्पीड़न
अविरत सुख है उत्पीड़न
दुःख-सुख की निशा-दिवा में
सोता-जागता जग-जीवन।

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का :
चिर हास-अश्रुमय आनन,
रे इस मानव-जीवन का।

शब्दार्थ

गदबदे	–	माँसल	नाटे	–	छोटे कद के
पासी	–	एक जाति	अस्थि	–	हड्डी
अनश्वर	–	नाश रहित, अमर	अधिवास	–	घर
दुर्बलतर	–	सबसे कमज़ोर	वह्नि	–	आग
उल्का	–	टूटता तारा,	झँझा	–	आँधी
कलेवर	–	शरीर	लोकोत्तर	–	अद्भुत, विचित्र
प्रासाद	–	महल	धरा	–	पृथ्वी
चिर	–	दीर्घ काल तक	घन	–	बादल
अति	–	अत्यन्त, अधिक	अविरत	–	लगातार
उत्पीड़न	–	पीड़ा देने वाला	आनन	–	चेहरा

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दो :

1. 'दो लड़के' कविता के प्रतिपाद्य को अपने शब्दों में लिखो।
2. 'दो लड़के' कविता का सार अपने शब्दों में लिखो।
3. 'सुख-दु:ख' में कवि ने सुख और दु:ख को क्या-क्या उपमाएं दी हैं – स्पष्ट करें।
4. 'सुख-दु:ख' कविता से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. सुन्दर लगती नग्न देह .... सच्चे।
6. यह साँझ उषा का आँगन .... जीवन का।

*****

8. हरिवंशराय बच्चन

हरिवंशराय बच्चन मूलत: हाला व मस्ती के कवि हैं। उनकी कविताएँ छायावादी कुहासे से मुक्त करके मानव को संघर्षमय जीवन-प्रवाह को भोगने का संदेश देती हैं। इस महान कवि का जन्म इलाहाबाद में सन् 1907 में हुआ। वहीं से अंग्रेज़ी में एम. ए. की परीक्षा पास की तथा वहीं पर पढ़ाते रहे। बच्चन जी ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) से पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। आपने कुछ महीने आकाशवाणी में कार्य किया। सन् 1955 में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय में हिंदी विशेषज्ञ के पद को सुशोभित किया। भारत के राष्ट्रपति महोदय ने आपको राज्यसभा का सदस्य भी मनोनीत किया था ।

पहली पत्नी के देहान्त तथा जीवन के एक पड़ाव पर आए कुछ आर्थिक संकटो ने इन्हें निराशावादी बना दिया। 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर' इनकी ऐसी ही रचनाएँ हैं। दूसरा विवाह होने पर तथा अच्छी नौकरी पाकर कवि प्रेम और सौन्दर्य की ओर झुका। 'संतरंगिनी', 'मिलनयामिनी' तथा 'प्रणय पत्रिका' संग्रहों में इन्हीं विषयों पर कविताएँ है। 'चार खेमे', 'चौसठ खूँटे', 'सूत की माला', 'खादी के फूल' तथा 'आरती और अंगारे' रचनाओं में बच्चन जी का छायावादोत्तर धारा का स्वर है।

बच्चन जी ने अनुवाद कार्य भी किया। वैसे गीतकार बच्चन जी का हिंदी जगत से सर्वप्रथम परिचय ही 'उमर खैयाम' की रुबाइयों के अनुवाद से हुआ। उनकी 'मधुशाला', 'मधुबाला' व 'मधुकलश' में रूढ़िवादिता के विरुद्ध सबल चुनौती है। इसमें कवि का निष्कपट हृदय छलकता है। उनकी अन्य रचनाएँ 'बंगाल का अकाल' तथा 'हलाहल' हैं। 'दो चट्टानें' कवि ने 1963-64 तक की प्रणीत रचनाओं का संकलन है। इसमें कवि ने अतीत और वर्तमान दोनों का महत्व जीवन को गतिशील बनाए रखने के लिए माना है।

डॉ. चौहान ने बच्चन जी के गीतों का मूल्यांकन करते लिखा है, ''बच्चन जी के गीतों ने हिंदी कविता का एक नया रूप संस्कार किया।''

कुल मिलाकर बच्चन जी की रचनाएँ रोचक और सरल हैं। भाव जीवनव्यापी हैं, भाषा में माधुर्य है। छन्दों में लय तथा शब्दों में मोहक शक्ति है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में बच्चन जी की दो महत्वपूर्ण कविताएँ संकलित हैं – 'पौधों की पीढ़ियाँ' और 'अन्धेरे का दीपक'।

पौधों की पीढ़ियाँ – उल्लास और मस्ती के कवि बच्चन जी की यह कविता युग सत्य को सामने रखती है। इसमें कवि ने प्राचीन और नवीन युग बोध में बदलती हुई विचारधारा को दिखाया है। प्राचीन युग में लोग किसी एक बड़े व्यक्ति की छत्र छाया में जीवनयापन करते हुए सुख एवं सुरक्षा का आभास करते थे। लेकिन युग के बदलने के साथ मूल्यों में – विचारधारा में – सोचने के ढंग में एक परिवर्तन आया। अब अपने ऊपर किसी बड़े बुजुर्ग व्यक्ति का आधिपत्य प्रगति का बाधक प्रतीत होने लगा। इसी विक्षोभ ने समय के साथ-साथ उन्हें उद्दण्ड बना दिया। बड़ो का अस्तित्व नई पीढ़ी के लिए असह्य होने लगा और इसे नकारने के लिए तथा इसका समूल नाश करने के लिए अब उसने बगावत शुरू कर दी। इस कविता को एक और दृष्टि से भी देखा गया है – कवि युग परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य क्षेत्र में आई नवीन विचारधारओं प्रगतिवाद के प्रभाव पर भी प्रकाश डालना चाहता है। भाषा सरल है। प्रतीकों ने कथ्य को अधिक स्पष्ट कर दिया है।

अन्धेरे का दीपक : प्रस्तुत गीत बच्चन जी का आशावादी गीत है। यह उनके काव्य-संग्रह 'सतरंगिनी' में संकलित है। कवि सन्देश देना चाहता है कि दुःख और अवसादपूर्ण क्षणों में भी मनुष्य को आशा का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। भले ही आपके सुनहरे सपने बिखर जाएं, किसी अमूल्य निधि को हम खो बैठें, फिर भी जो कुछ शेष है उससे अपना नया संसार रच सकते हैं। लगता है कवि का यह भोगा हुआ सत्य है। इसीलिए इसमें शुद्ध साहित्यिक भाषा में अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की सत्यता दृष्टिगोचर होती है।

पौधों की पीढ़ियाँ

देखा, एक बड़ा बरगद का पेड़ खड़ा है ;
उसके नीचे हैं
छोटे-छोटे कुछ पौधे-
बड़े सुशील-विनम्र-
लगे मुझसे यों कहने,
''हम कितने सौभाग्यवान हैं।
आसमान से आग बरसे, पानी बरसे,
आँधी टूटे, हमको कोई फ़िकर नहीं है।
एक बड़े की वरद छत्र-छाया के नीचे
हम अपने दिन बिता रहे हैं
बड़े सुखी हैं।''
....
देखा, एक बड़ा बरगद का पेड़ खड़ा है ;
उसके नीचे हैं
छोटे-छोटे कुछ पौधे-
असंतुष्ट और रुष्ट।
देखकर मुझको बोले,
''हम भी कितने बदकिस्मत हैं !
जो खतरों का नहीं सामना करते
कैसे वे ऊपर को उठ सकते हैं।

इसी बड़े की छाया ने तो
हमको बौना बना रखा :
हम बड़े दुखी है।''
....
देखा, एक बड़ा बरगद पेड़ खड़ा है ;
उसके नीचे हैं
छोटे-छोटे कुछ पौधे -
तने हुए उद्दण्ड।
देखकर मुझको गरजे,
''हमको छोटा रखकर ही
यह बड़ा बना है ;
जन्म अगर हम पहले पाते
तो हम इसके अग्रज होते,
हम इसके दादा कहलाते,
इस पर छाते।
नहीं वक्त का जुल्म हमेशा
हम यों ही सहते जाएँगे।
हम काँटों की
आरी और कुल्हाड़ी अब तैयार करेंगे :
फिर जब आप यहाँ आएँगे,
बरगद की डाली-डाली कटती पाएँगे :
ठूँठ-मात्र यह रह जाएगा-
नंगा-बूचा।
और निगल जाएंगे तन हम इसे समूचा।''

('बहुत दिन बीते' से)

अंधेरे का दीपक

है अंधेरी रात, पर दीवा जलाना कब मना है?
कल्पना के हाथ से कमनीय
जो मन्दिर बना था,
भावना के हाथ ने जिसमें
वितानों को तना था,
स्वप्न ने अपने करों से
था जिसे रुचि से सँवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों
से, रसों से जो सना था।
ढह गया वह तो जुटाकर
ईंट, पत्थर, कंकड़ों को।
एक अपनी शाँति की
कुटिया बनाना कब मना है?
है अंधेरी रात, पर दीवा जलाना कब मना है?
बादलो के अश्रु में धोया
गया नभ-नील नीलम
का बनाया था गया मधु-
पात्र मनमोहक, मनोरम,
प्रथम उषा की किरण को
लालिमा-सी लाल मदिरा
थी उसी में चमचमाती
नव घनों में चंचला, सम,
वह अगर टूटा मिलाकर
हाथ की दोनों हथेली,

एक निर्मल स्रोत से
तृष्णा बुझाना कब मना है?
है अंधेरी रात, पर दीवा जलाना कब मना है?

('सतरंगिनी' से)

शब्दार्थ

वरद	- वर देने वाला, शुभ	विनम्र	- विनीत
बौना	- छोटे कद का, अधूरा	उद्दण्ड	- जिसके स्वर में बगावत हो
अग्रज	- बड़े	कमनीय	- सुन्दर
मन्दिर	- महल, घर	दुष्प्राप्य	- जिसे प्राप्त करना कठिन हो
नभ	- नील-नीला आसमान	मधु-पात्र	- मधु (सुरा) पान के लिए प्याला
चंचला	- तड़ित, आसमानी बिजली	वितान	- शामियाना
मनोरम	- सुन्दर	निर्मल स्रोत	- शुद्ध
तृष्णा	- प्यास		

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'पौधों की पीढ़ियाँ' में छोटे-छोटे सुशील और विनम्र पौधों का क्या कहना है?
2. 'बरगद का पेड़' किस का प्रतीक है? स्पष्ट करें।
3. 'पौधों की पीढ़ियाँ' युग सत्य को उद्भासित करती हैं, स्पष्ट करें।
4. 'मधु पात्र टूटने' तथा 'मन्दिर के ढहने' के द्वारा कवि क्या कहना चाहता है?
5. 'अंधेरे का दीपक' कविता का सार लिखो।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. ''कल्पना के हाथ से कमनीय .... था।''
7. '' नहीं वक्त का जुल्म हमेशा .... इसे समूचा।''

*****

9. सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

प्रयोगवादी कविता के नेता सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' करतारपुर के भणोत सारस्वत ब्राह्मण कुल के हैं। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को 'कसया', पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ। इनके पिता हीरानन्द शास्त्री भारत के पुरातत्व विभाग की सेवा में एक उच्च अधिकारी थे। अज्ञेय का बचपन 1911 से 1915 तक लखनऊ में, 1915 से 1919 तक श्रीनगर और जम्मू में बीता। 1919 में आप पिता जी के साथ नालन्दा आए और 1925 तक वहीं रहे। सन् 1927 में लाहौर के फॉरमन कॉलेज में बी. एस. सी. में भर्ती हुए। इसी कॉलेज में आप 'नौजवान भारत सभा' के सम्पर्क में आए और हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के प्रमुख सदस्य आज़ाद, सुखदेव और भगवतीचरण वोहरा से परिचय हुआ। 1929 में बी. एस. सी. करके एम. ए. अंग्रेज़ी में दाखिला लिया। इनके क्रान्तिकारी जीवन की अवधि 1929 से आरम्भ होकर 1936 तक है। इसके बाद आप 'सैनिक', 'विशाल भारत' आदि के सम्पादन मंडल में गए। सन् 1940 में इन्होंने सिविल मैरिज की। यह शादी बहुत बड़ी चुभन बनी। सन् 1943 से 1946 तक यह युद्ध में रहे। इसी दरम्यान इनका साहित्यिक कार्य चलता रहा। सन् 1945 तक इनके तीन कविता संग्रह 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्' तथा तीन कहानी संग्रह 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात' छप चुके थे और पहला उपन्यास 'शेखर' भी; यही नहीं इसी दौरान 'तारसप्तक' भी ये प्रकाशित कर चुके थे। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा तारसप्तक छपा तथा नई कविता विकास की ओर अग्रसर हुई।

1945 से 1964 तक के बीस वर्ष अज्ञेय के जीवन में यथार्थ और आदर्श के संघर्ष के साल रहे। 1946 में गुरदासपुर में इनके पिता की मृत्यु हुई। मार्च 1947 में ये इलाहाबाद आ गए और 'प्रतीक' नामक पत्र के माध्यम से कला, संस्कृति व साहित्य की सेवा की। 1949 और 55 के बीच 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'नदी के द्वीप' आदि छप चुके थे। अनेक बाधाओं और कठिनाइयों को पार करते आपने 7 जुलाई 1956 को विवाह किया। आपने इसके बाद विदेश भ्रमण भी किया। अप्रैल 1958 में स्वदेश लौटे और 1960 तक दिल्ली में रहे। इस समय तीसरा सप्तक भी छपा। इसके बाद इन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, शिकागो विश्वविद्यालय, बर्कले, हालैंड, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैंड, स्विटजरलैंड, इटली और ग्रीस की यात्रा की।

अज्ञेय की कविता में जीवन के आस्वादन पर बल दिया गया है। वे इस संसार की समग्रता को ग्रहण करते हैं। उनकी भाषा में अनगढ़पन नहीं है। उन्होंने लोकगीत, संस्कृत कविता, जापानी कविता और जाने कहाँ कहाँ से लय का अन्वेषण किया। सन् 1979 में 'कितनी नावों में कितनी बार' कविता संग्रह पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार, 1983 में इंटरनेशनल पोएट्री एवार्ड से सम्मानित हुए।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त अज्ञेय जी की निम्नलिखित रचनाएँ प्रमुख हैं

कविता – पूर्वा, सुनहरे शैवाल, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, महावृक्ष के नीचे, सागर मुद्रा आदि।

नाटक – उत्तर प्रियदर्शी

कहानियाँ – अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ, कड़ियाँ और अन्य कहानियाँ, अछूते फूल और अन्य कहानियाँ, जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ, छोड़ा हुआ रास्ता।

उपन्यास – नदी के द्वीप, अपने अपने अजनबी।

भ्रमण वृतांत – अरे यायावर याद रहेगा, एक बूँद सहसा उछली।

निबन्ध संग्रह – त्रिशंकु , आलवाल, भवन्ती, अन्तरा, जोग लिखी, अपरोत्र, आत्परक, सर्जना और सन्दर्भ आदि।

इसके अतिरिक्त आपने अनुवाद एवं सम्पादन कार्य भी किया। इनका सन् 1987 में निधन हो गया। हिंदी साहित्य में अज्ञेय जी का अपना विशेष स्थान सर्वदा रहेगा।

पाठ परिचय

लघु कविताओं के अन्तर्गत प्रस्तुत संकलन में नई कविता के प्रमुख कवि अज्ञेय जी की दो प्रसिद्ध लघु कविताएँ ली गई हैं।

(1) साँप : इस कविता के माध्यम से कवि ने आज के तथाकथित 'सभ्य' और 'नगरी' कहे जाने वाले समाज पर व्यंग्य किया है। अति भौतिकतावाद के मुखौटे ओढ़े हुए शहरी समाज भीतर से कितना विषैला है और कहाँ तक चोट कर सकता है इसे अत्यन्त लघु कलेवर में कवि ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। भाषा सरल है, शैली में प्रवाह एवं व्यंग्य है।

(2) जो पुल बनायेंगे : इस कविता में अज्ञेय जी ने आधुनिक युग के सत्य को प्रकट किया है। निर्माता का इतिहास में नाम न आना नींव की ईंट की भूमिका को नज़रअंदाज़ करना है। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है। आधुनिक युग में पुल बनाने वाले पर्दे के पीछे ही रह जायेंगे । कवि ने राम, रावण और बन्दर के उदाहरण द्वारा अपनी बात कहने का प्रयास किया है।

साँप

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना
विष कहाँ पाया?

('इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये' से)

जो पुल बनायेंगे

जो पुल बनायेंगे
वे अनिवार्यत :
पीछे रह जायेंगे।
सेनाएँ हो जायेंगी पार
मारे जायेंगे रावण
जयी होंगे राम,
जो निर्माता रहे
इतिहास में
बन्दर कहलायेंगे।

('पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' से)

शब्दार्थ

साँप - ईर्ष्या रखने वाला तथा कथित सभ्य नागरिक

विष - ज़हर

अनिवार्यत:- यकीनन, निश्चय से

कुरूप - बदसूरत

जयी - विजेता

निर्माता - बनाने वाले

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दें :

1. साँप कविता का उद्देश्य स्पष्ट करें।
2. साँप कविता तथाकथित सभ्य व नगर समाज पर एक करारी चोट है। आप इससे कहाँ तक सहमत है?
3. 'जो पुल बनायेंगे' कविता में कवि ने प्राचीन प्रतीकों के माध्यम से आज के युग सत्य को प्रकट किया है, स्पष्ट करें।
4. साँप कविता का केन्द्रीय भाव लिखें।
5. 'जो पुल बनायेंगे' कविता का भाव अपने शब्दों में लिखो।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. साँप ! तुम सभ्य तो हुए नहीं .... विष कहाँ पाया?
7. जो पुल बनायेंगे .... बन्दर कहलायेंगे।

*****

10. शिवमंगल सिंह सुमन

श्री शिवमंगल सिंह सुमन प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। आपका जन्म 16 अगस्त सन् 1916 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव ज़िले के झगरपुर ग्राम में हुआ। आपने आरम्भिक शिक्षा रीवाँ राज्य में पाई। मैट्रिक से बी. ए. तक आपने विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर में अध्ययन किया। फिर आपने हिंदी में एम. ए. तथा डी. लिट की उपाधियाँ हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राप्त कीं। यहाँ पर आप आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य केशव प्रसाद मिश्र तथा पंडित मदन मोहन मालवीय के सम्पर्क में आए तथा उनके विचारों और व्यक्तित्व से आप विशेष रूप से प्रभावित हुए।

सुमन जी ने प्रणय गीत भी लिखे। लेकिन इनका विशेष महत्व इनकी प्रगतिवादी रचनाओं के कारण है। अपने संकलन 'जीवन के गान' की भूमिका में कवि ने इस सत्य को स्वीकारा है। उनके शब्दों में ''क्योंकि पुरानी मध्यवर्गीय मिथ्या कल्पनाओं और स्वप्नों को तोड़कर अब मैं नई सृष्टि के स्वप्नों को कार्य रूप में परिणत करने वाली मानवता के सामूहिक कार्य में अपना योगदान देने का प्रयत्न कर रहा हूँ... मैं भी इस संघर्ष का एक अंग हूँ और उसमें सक्रिय भाग लेने के लिए, उसका अभिन्न अंग बनने के लिए मैं सजग हो उठा हूँ...।'' इस प्रकार इनकी कविताओं में असन्तोष व क्रान्ति के स्वर देखने को मिलते हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'जीवन के गान' के अतिरिक्त 'प्रण्य सृजन', 'हिल्लोल' तथा 'पर आँखें नहीं भरीं' प्रसिद्ध हैं। सुमन जी की भाषा सरल, प्रभावशाली है। शैली में गति व प्रवाह है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में शिवमंगल सिंह सुमन की दो प्रमुख कविताएँ 'चलना हमारा काम है' तथा 'मानव बनो, मानव ज़रा' से ली गई हैं।

चलना हमारा काम है: यह कविता सुमन जी के 'हिल्लोल' काव्य संग्रह से उद्धृत है। जीवन आशा और निराशा, सुख और दु:ख का ही नाम है। मानव को जीवन का यह सफर उत्साह और हिम्मत से करना चाहिए और फिर दुनिया में कौन ऐसा है- जिसे

कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। इसलिए बिना कष्टों की परवाह् किए आगे बढ़ना ही ज़िन्दगी है। इस यात्रा में कुछ नए रिश्ते बनते है – कुछ टूट जाते हैं। कुछ पुराने मुसाफिर छूट जाएंगे– कुछ नए साथी मिल जाएंगे और यात्रा इसी तरह चलती रहेगी। और एक सच्चाई यह भी है कि यहाँ जीने के लिए मिटना पड़ता है– यहाँ अमरत्व पाने के लिए विष पीना पड़ता है। कविता प्रेरणादायक है– भाषा सरल है तथा उसमें गति व प्रवाह है।

मानव बनो, मानव ज़रा : यह कविता सुमन जी के काव्य संग्रह 'जीवन के गान' से ली गई है। कवि इसमें आत्म निर्भर होने की बात करता है। अश्रु बहाने या किसी के आगे हाथ फैलाने का कोई लाभ नहीं अपने आँसुओं को यूँ न बहाओ। धरती का कण इस संवेदना से भर दो। अगर जलना ही है – तो पृथ्वी के कल्याण के लिए जलो – ताकि मानवता तुम पर गर्व कर सके। भाषा अत्यन्त सरल है – कविता में गति है।

चलना हमारा काम है

गति प्रबल पैरों में भरी
        फिर क्यों रहूँ दर-दर खड़ा
जब आज मेरे सामने
        है रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंज़िल पा सकूँ, तब तक न मुझे विराम है,
        चलना हमारा काम है।।

कुछ कह लिया कुछ सुन लिया
        कुछ बोझ अपना बंट गया
अच्छा हुआ तुम मिल गई
        कुछ रास्ता ही कट गया
क्या राह में परिचय कहूँ, राही हमारा नाम है,
        चलना हमारा काम है।।

जीवन अपूर्ण लिये हुए
        पाता कभी खोता कभी
आशा निराशा से घिरा
        हँसता कभी रोता कभी,
गति मति न हो अवरुद्ध, इसका ध्यान आठों याम है,
        चलना हमारा काम है।।

इस विशद विश्व-प्रवाह में
        किसको नहीं बहना पड़ा,
सुख-दुःख हमारी ही तरह
        किसको नहीं सहना पड़ा,

फिर व्यर्थ क्यों कहता फिरूँ, मुझ पर विधाता वाम है,
चलना हमारा काम है।।

मै पूर्णता की खोज में
दर-दर भटकता ही रहा
प्रत्येक पग पर कुछ न कुछ
रोड़ा अटकता ही रहा
पर हो निराशा क्यों मुझे? जीवन इसी का नाम है,
चलना हमारा काम है।।

कुछ साथ में चलते रहे
कुछ बीच ही से फिर गये
पर गति न जीवन की रुकी,
जो गिर गए सो गिर गए,
चलता रह शाश्वत, उसी की सफलता अभिराम है,
चलना हमारा काम है।।

मैं तो फ़कत यह जानता
जो मिट गया वह जी गया
जो बन्दकर पलकें सहज
दो घूँट हँसकर पी गया
जिसमें सुधा-मिश्रित गरल, वह साकिया का जाम है
चलना हमारा काम है।।

('हिल्लोल' से)

मानव बनो, मानव ज़रा

है भूल करना प्यार भी
है भूल यह मनुहार भी
पर भूल है सबसे बड़ी

करना किसी का आसरा
मानव बनो, मानव ज़रा

अब अश्रु दिखलाओ नहीं
अब हाथ फैलाओ नहीं
हुँकार कर दो एक जिससे
थरथरा जाए धरा
मानव बनो, मानव ज़रा।

उफ़ हाय कर देना कहीं
शोभा तुम्हें देता नहीं
इन आँसुओं से सींच कर दो

विश्व का कण कण हरा
मानव बनो, मानव ज़रा

अब हाथ मत अपने मलो
जलना अगर ऐसे जलो़
अपने हृदय की भस्म से

कर दो धरा को उर्वरा
मानव बनो, मानव ज़रा।

('जीवन के गान' से)

शब्दार्थ

अवरुद्ध	-	रुकना,	आठों-याम	-	आठों पहर
विशद	-	विस्तृत, विशाल	अर्थात् हर समय		
शाश्वत	-	निरन्तर	अभिराम	-	सुन्दर, निश्चित
गरल	-	विष	उर्वरा	-	उपजाऊ
हुँकार	-	गर्जन	साकिया	-	शराब पिलाने वाला
गतिमति	-	बुद्धि की चाल			

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दे :-

1. "चलना हमारा काम है" कविता आशा और उत्साह की कविता है – स्पष्ट करें।

2. 'चलना हमारा काम है' कविता का सार लिखो।

3. 'मानव बनो, मानव ज़रा' कविता का शीर्षक क्या सन्देश देता है? स्पष्ट करें।

4. 'मानव बनो' मानव ज़रा' कविता का सार लिखें।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. मैं तो फ़कत यह जानता
    जो मिट गया वह जी गाया।
जो बन्द कर पलकें सहज
    दो घूँट हँस कर पी गया।
जिसमें सुधा मिश्रित गरल, वह साकिया का जाम है
    चलना हमारा काम है।।

6. उफ हाय कर देना कहीं
शोभा तुम्हें देता नहीं
    इन आँसुओं से सींच कर दो
    विश्व का कण कण हरा
मानव बनो, मानव ज़रा

*****

11. गिरिजा कुमार माथुर

गिरिजा कुमार माथुर गहरे आत्म संवेदन तथा आत्मनिष्ठ अनुभूतियों के कवि है। वह प्रयोगवाद तथा नई कविता के समर्थ कवि हैं। उनकी कविता में रस-रोमाँच, युग का यथार्थ तथा वैज्ञानिक चेतना भी दिखाई देती है। गिरिजा कुमार माथुर का जन्म सन् 1919 में अशोक नगर मध्य प्रदेश में हुआ। एम. ए., एल. एल. बी. करने के बाद आपने कुछ देर झाँसी से वकालत की और फिर आकाशवाणी दिल्ली में चले आए। सन् 1950 में न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्र संघ में नियुक्ति हुई। आपने अनेक देशों का भ्रमण किया और पुन: आकाशवाणी के लखनऊ व जालन्धर केन्द्रों में कार्य करने लगे। 'तार सप्तक में' प्रकाशित कविताओं के अतिरिक्त मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान, शिलापंख चमकीले आपके काव्यग्रंथ हैं व 'पृथ्वीकल्प' प्रतीकात्मक नाट्यकाव्य है।

गिरिजा कुमार माथुर ने आधुनिक हिंदी कविता के स्वरूप-निर्माण तथा दिशा निर्देशन का महत्वपूर्ण कार्य किया। आपने विषय के साथ-साथ तकनीक पर अधिक ध्यान दिया। शब्द चित्रण, स्वर संगीत, दृश्य चित्रण, नवीन बिम्ब विधान उनकी कला की विशेषता है। भाषा सरल है। मुक्तक छन्द की कविता व गीत दोनों लिखे गए। कवि ने जीवन की मधुर भावना का रसमय चित्रण किया है। प्रेम का माँसल और लौकिक रूप उनकी कविताओं में है। उन्होंने सामाजिक विषमता, आम आदमी के जीवन विशेषकर मध्यवर्गीय जीवन की पीड़ा को व्यक्त किया है। उनका स्वर आस्था और आशा का रहा है। उन्होंने वैज्ञानिक उपकरणों को अपने प्रतीकात्मक नाटक में लिया है।

इस प्रकार माथुर जी छायावादोत्तर काल के उन कवियों में हैं, जिन्होंने नई कविता को अपने ढंग से अपनाया है। आप प्रगति और प्रयोग को मिलाकर चलने वाले कवि हैं।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में श्री गिरिजा कुमार माथुर जी की दो कविताएँ संकलित हैं। पहली कविता है - **आदमी का अनुपात।** इसमें कवि श्री माथुर ने अपनी पैनी सूझबूझ से मानव की मानव के प्रति संकीर्ण सोच को कविता का प्रतिपाद्य बनाया है। कवि के अनुसार इस नभ गंगा की विस्तृत परिधि में लाखों ब्रह्माण्डों के मध्य आदमी का अनुपात (अस्तित्व) कितना तुच्छ एवं

कितना नगण्य-सा है। फिर भी अनगिनत देशों, प्रदेशों, नगरों, मुहल्लों, घरों तथा कमरों वाली इस पृथ्वी के अहं तथा स्वार्थ के घेरे में आबद्ध आदमी घृणा, ईर्ष्या, अविश्वास एवं कुण्ठा से ग्रस्त होकर एक दूसरे पर प्रभुत्व जमाकर अपनी अलग-अलग दुनिया रचाना चाहता है। कवि ने अपने काव्य कौशल से नए प्रतीकों के माध्यम से सरल और प्रवाहमयी भाषा में मानव जीवन की विडम्बना को साकार किया है।

दूसरी कविता है '**पन्द्रह अगस्त**'। इसमें कवि ने राष्ट्रवासियों को सम्बोधित किया है कि आज़ादी प्राप्त करने से भी बड़ा कार्य उस स्वाधीनता को बनाए रखना है। स्वतन्त्रता आ तो गई है लेकिन अभी पुराने दु:खों का इतिहास समाप्त नहीं हुआ है। हमारे समक्ष दो प्रकार के शत्रु हैं - एक है सीमाओं पर खड़ा शत्रु, जब भी हम असावधान हुए तो वह आक्रमण कर सकता है - दूसरा शत्रु है हमारी अभावग्रस्तता, शोषण, साम्प्रदायिकता, वैमनस्य की भावना। लेकिन हमें विश्वास है कि स्वाधीनता के साथ जन जीवन में नई चेतना, नई ज़िन्दगी का संचार होगा। इसलिए राष्ट्रवासियों एक नए भारत के निर्माण के लिए हमेशा गतिमान रहना और सावधान रहना। कविता की भाषा में प्रवाह है, तत्सम् शब्दों का भी प्रयोग है, राष्ट्रीयता की भावना है।

आदमी का अनुपात

दो व्यक्ति कमरे में
कमरे से छोटे,
कमरा है घर में
घर है मुहल्ले में
मुहल्ला नगर में
नगर है प्रदेश में
प्रदेश कई देश में
देश कई पृथ्वी पर
अनगिन नक्षत्रों में
पृथ्वी एक छोटी
करोड़ों में एक ही
सबको समेटे है।
परिधि नभ–गंगा की
लाखों ब्रह्मांडों में
अपना एक ब्रह्मांड
हर ब्रह्मांड में
कितनी ही पृथ्वियाँ
कितनी ही भूमियाँ
कितनी ही सृष्टियाँ
यह है अनुपात

आदमी का विराट में।
इस पर भी आदमी।
ईर्ष्या, अहं, स्वार्थ, घृणा, अविश्वास लीन
संख्यातीत शंख सी दीवारें उठाता है
अपने को दूजे का स्वामी बताता है
देशों की कौन कहे
एक कमरे में
दो दुनिया रचाता है।

('शिला पंख चमकीलें' से)

पन्द्रह अगस्त

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना।।
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना
प्रथम चरण है नये स्वर्ग का
है मंजिल का छोर
इस जन-मंथन से उठ आई
पहली रत्न हिलोर
अभी शेष है पूरी होना
जीवन-मुक्ता डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दु:ख की
विगत साँवली कोर
ले युग की पतवार

बने अंबुधि महान रहना।
पहरुए, सावधान रहना।।
विषम शृंखलाएँ टूटी हैं
खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग-बंदिनी हवाएँ
प्रश्न चिह्न बन खड़ी हो गई।
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रही प्रतिमाएँ
उठता है तूफान, इन्दु तुम
दीप्तिमान रहना
पहरुए, सावधान रहना।।

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से मृत है समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किन्तु आ रही नई ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है
जनगंगा में ज्वार,
लहर, तुम प्रवाहमान रहना।
पहरुए, सावधान रहना।।

शब्दार्थ

परिधि	– सीमा	अहं	– अहंकार
अनुपात	– अस्तित्व	विराट	– विशाल
संख्यातीत	– असंख्य, अनगिनत	पहरुए	– देशवासी, देश के रक्षक
अंबुधि	– समुद्र, सागर	शृंखलाएँ	– ज़जीरें, बन्धन
दीप्तिमान	– प्रज्वलित	शोषण	– दमन
प्रवाहमान	– गतिशील	जनमंथन	– जन क्राँति

पुराने सिहांसन – एक अर्थ 'पुरानी मान्यताएँ'

ज्वार – तूफान

विगत साँवली – पुरानी अंधेरी, प्राचीन दु:खों और कष्टों की गुलामी का इतिहास

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'आदमी का अनुपात' कविता में कवि ने मानव की संकीर्ण सोच और उसकी अहं की भावना का चित्रण किया है। अपने शब्दों में लिखो।
2. विशाल संसार में मनुष्य का अस्तित्व क्या है? प्रस्तुत कविता के आधार पर लिखो।
3. ''आदमी का अनुपात'' कविता का सार अपने शब्दों में लिखे।
4. 'पन्द्रह अगस्त' माथुर जी की राष्ट्रीयवादी कविता है –स्पष्ट करें।
5. 'पन्द्रह अगस्त' कविता का सार लिखते हुए इसका प्रतिपाद्य स्पष्ट करें।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. ऊँची हुई मशाल .... सावधान रहना।
7. इस पर भी आदमी .... दो दुनिया रचाता है।

*****

12. धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती समसामयिक काव्य चेतना के प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी कविता में मध्यवर्गीय जीवन की कुण्ठा, बौद्धिकता व जागरूकता की ध्वनि है। आप भारतीय जीवन की सच्ची अनुभूतियों के सहज शिल्पी हैं। इनका जन्म सन् 1926 ई० में इलाहाबाद में हुआ। वहीं प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. तथा पी. एच. डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। कुछ समय तक अध्यापन कार्य किया। बाद में साप्ताहिक 'धर्मयुग' के प्रधान सम्पादक हो गए।

धर्मवीर भारती जी मूलत: कवि हैं। 'दूसरा सप्तक' में आप की रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त ठंडा लोहा, अन्धायुग, सात गीत वर्ष, देशान्तर, कनुप्रिया प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थ हैं। 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं जबकि 'नदी प्यासी थी' नाटकों का संकलन है। 'बन्द गली का आखरी मकान' कहानी संग्रह है। 'ठेले पर हिमालय' आदि में इनके निबन्ध संकलित हैं। 'मानव मूल्य और साहित्य' तथा 'प्रगतिवाद: एक समीक्षा' इनकी आलोचनात्मक कृतियाँ है। साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने कई कीर्तिमान स्थापित किए। भारतीय सरकार ने आपको 'पदम श्री' की उपाधि से भी अलंकृत किया।

भारती जी ने कविता में अनुभूति की प्रखरता और ईमानदारी को अधिक महत्व दिया है । इन्हें जीवन के भोग का कवि माना जाता है। इनकी रचनाओं में सिद्धों का रतिवाद, वैष्णवों का महाभाव तथा छायावाद का रोमाँस सब मिलता है। इनकी कविता का मूल स्वर है जीवन जीने योग्य है, उसे भोगना चाहिए उससे भागना नहीं। इन्होंने पौराणिक पात्रों को लेकर वर्तमान संदर्भ में उनके अर्थ निकाले हैं। 'कनुप्रिया' में राधा और कृष्ण को लेकर कृष्ण के चरित्र को शासक, कूटनीतिज्ञ तथा इतिहास पुरुष के रूप में सामने रखा तथा बतलाया कि नारी नर की केवल वासना संगिनी ही नहीं अपितु वह युग इतिहास की विधायिनी भी है। इनका 'अन्धायुग' महाभारत की कथा के माध्यम से राजनैतिक दाव पेचों की धज्जियाँ उड़ाता है तथा युद्ध के खोखलेपन की ओर इशारा करता है।

इस प्रकार धर्मवीर भारती आधुनिक हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

पाठ परिचय

प्रस्तुत संकलन में धर्मवीर भारती जी की कविता 'निर्माण योजना' ली गई है। यह कविता उनके संग्रह 'सात गीत वर्ष' में से ली गई है। कवि ने **'बाँध'**, **'यातायात'**, **'कृषि'** तथा **'स्वास्थ्य'** में इस निर्माण योजना को विभक्त किया है। **'बाँध'** में कवि ने घृणा रूपी नदी के पानी को बाँधकर उसे सही दिशा देने की बात की है और इसी घृणा को प्रेम की ताकत में परिणत कर मानवता के कल्याण में प्रयोग करने को कहा है। निर्माण योजना का दूसरा पड़ाव है – **'यातायात'**। कवि चाहता है कि बिना किसी बन्धन के स्वच्छन्द विचारधारा को निर्विघ्न फलने फूलने का अवसर मिले। **'कृषि'** में भारती जी चाहते हैं कि भेदभाव को मिटाकर समाज सुख की खेती करता रहे, तभी देश खुशहाल होगा। **'स्वास्थ्य'** निर्माण योजना का अन्तिम पड़ाव है। यहाँ कवि ने अहम् को त्याग कर धरती पर पैर टिकाकर चलते रहने का आह्वान किया है। इस प्रकार भारती जी ने प्रतीकों के माध्यम से एक स्वस्थ समाज के निर्माण की बात की है। कवि की भाषा भावानुकूल है। कविता प्रयोगवादी है।

निर्माण योजना

1. बाँध

बाँधों।
नदी यह घृणा की है
काली चट्टानों के
सीने से निकलती है
अन्धी ज़हरीली गुफाओं से
उबली है।
इसको छूते ही
हरे वृक्ष सड़ जायेंगे
नदी यह घृणा की है।
लेकिन नहीं है निरर्थक यह
बंधने से इसको भी अर्थ मिल जाता है।
इसकी ही लहरों में
बिजली के शक्तिवान घोड़े हैं सोये हुए।
जोतों उन्हें खेतों में, हलों में –
भेजो उन्हें नगरों में, कलों में –
बदलो घृणा को उजियाले में
ताकत में,
नये,नये रूपों में साधो–
बाँधो –
नदी यह घृणा की है।

2. यातायात

बिना किसी बाधा के
नित नई दिशाओं में
जाने की
सुविधा दो।
बिना किसी बाधा के
श्रम के पसीने से
सिंची हुई फ़सलों को
खेतों से आँतों तक जाने की
सुविधा दो।
बिना किसी बन्धन के
हर चलते राही को
यात्रा में
अक्सर थक जाने पर
मनचाहे नये गीत गाने की
सुविधा दो।
कभी-कभी अजब-सी रहस्यमयी पुकारों पर
मन को अपरिचित नक्षत्रों की राहों में
जाकर खो जाने की
सुविधा दो।

3. कृषि

ये फ़सलें काटो ....
पिछले ज़माने में
बीज जो बोये विषमता के
आज वहीं साँपों की खेती उग आई है।
धरती को फिर से संवारो

क्यारी में बीज नये डालो
पसीने के, आँसू के,
प्यार के, हमदर्दी के,
मेड़ें मत बाँधो,
भूमि सबकी,
दर्द सबका है।

4. स्वास्थ्य

वे सब बीमार हैं
वे जो उन्मादग्रस्त रोगी से
मंचों पर जाकर चिल्लाते हैं
बकते हैं
भीड़ में भटकते हैं
वात पित कफ़ के बाद
चौथे दोष अहम् से पीड़ित हैं।
बस्ती-बस्ती में
नये अहम् के अस्पताल खुलवाओ।
वे सब बीमार हैं
डरो मच - तरस खाओ।

('सात गीत वर्ष' से)

शब्दार्थ

निरर्थक - जिसका कोई अर्थ न हो
अपरिचित - अनजाने
उन्मादग्रस्त - एक प्रकार के सनक से पीड़ित
अहम् - घमंड
बाधा - रुकावट
विषमता - असमानता
कलों - यन्त्रों
काली चट्टानों - धार्मिक संकीर्णता
अन्धी ज़हरीली गुफाएँ - साम्प्रदायिक रूढ़िवादिता

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'बाँध बाँधना' निर्माण योजना का प्रथम चरण हैं। कवि किस प्रकार का बाँध बाँधकर कौन सी शक्ति पैदा करना चाहता है?
2. 'यातायात' में स्वच्छन्द विचारधारा को फलने फूलने का मौका देने की बात की गई है, इसे स्पष्ट करें।
3. 'कृषि' में कवि ने विषमता, रूढ़िवादिता की फसलें काटने की बात की है। कवि किस प्रकार की खेती करना चाहता है और कैसे? स्पष्ट करें।
4. 'स्वास्थ्य' में भारती जी ने निर्माण योजना के अन्तिम चरण के रूप में अहम् के शिकार रोगियों के लिए अस्पतालों की व्यवस्था करने की बात की है। कवि का विचार स्पष्ट करें।
5. 'निर्माण योजना' कविता का सार लिखो।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. बाँधों .... घृणा की है।
7. ये फसलें .... दर्द सबका है।

*****

13. डॉ. चन्द्र त्रिखा

डॉ. चन्द्र त्रिखा एक संवेदनशील कवि, सशक्त गज़लकार, प्रबुद्ध शिक्षाविद् तथा स्थापित पत्रकार के रूप में उस समर्पित पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं जिसके लिए साहित्य-सर्जन वास्तव में साधना रही है। आप का जन्म 7 जुलाई, 1945 को पाक पट्टन ज़िला साहिलवाल (पाकिस्तान) में हुआ। इनके पिता डॉ. गणपत राय त्रिखा व माता श्रीमती कौशल्या देवी पाकिस्तान बनने के बाद पंजाब के सीमावर्ती क्षेत्र फिरोज़पुर ज़िला में आ गए। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अबोहर, फाज़िल्का में हुई। स्नातक स्तर की परीक्षाएँ पास करने के बाद आपने एस.डी. कॉलेज अम्बाला से एम.ए. हिंदी किया तथा पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से पी.एच.डी. की। आपने अध्यापन और पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। 'दैनिक मिलाप', 'वीर प्रताप', 'नवभारत टाइम्स' 'दैनिक जागरण', 'जन सन्देश', 'ट्रिब्यून-समूह' एवम् 'युगमार्ग' आदि दैनिक समाचार-पत्रों में लगभग 30 वर्षों तक आपने कार्य किया। इनमें आपका साहित्य सम्बन्धी कार्य प्रेरणा का स्रोत रहा।

डॉ. त्रिखा ने 'पाषाण युग', 'शब्दों का जंगल', 'दोस्त', 'अब पर्दा गिराओ' नामक काव्य संग्रहों की रचना की। 'पाषाण युग' पर इन्हें सन् 1968 में हरियाणा सरकार द्वारा सम्मानित किया गया। आंतकवाद के विरुद्ध सृजन संघर्ष के रूप में 'काली नदी' नामक काव्य-संकलन का सम्पादन किया। जहाँ तक डॉ. त्रिखा की काव्य संवेदना का प्रश्न है, उनकी गज़लों में उर्दू गज़ल की शास्त्रीय खूबियाँ तो हैं ही - साथ ही युगीन बोध का अनूठा संगम देखने को मिलता है। उन्होंने जीवन और जगत की तमाम कड़वी और कसैली स्थितियों का चित्रण अपनी खूबसूरत शब्द योजना व अप्रतिम बिम्ब विधान के द्वारा किया है। डॉ. त्रिखा की कविता में एक ओर ज़िन्दगी के मायनों की तलाश है - वहाँ कलात्मक सौन्दर्य की अतृप्ति से उपजी एक छटपटाहट भी। आप निदेशक हरियाणा साहित्य अकादमी के रूप में साहित्य साधक के रूप में कार्यरत हैं।

पाठ परिचय

यहाँ डॉ. त्रिखा की दो लघु कविताएँ **'जुगनू की दस्तक'** तथा **'जीने को कुछ मानी दे'** उनके काव्य संग्रह 'दोस्त ! अब पर्दा गिराओ' से संकलित की गई हैं। **'जुगनू की दस्तक'** एक आशावादी प्रतीकात्मक कविता है। नफरत, घृणा और निराशा की अंधेरी रात में आशावाद का जुगनू रोशनी के लिए पर्याप्त है। काली नदी आतंक का प्रतीक है लेकिन अगर प्रेम और सौहार्द्र की पतवारें चलाते रहें, तो यह आतंक और नफरत की काली नदी पार की जा सकती है। निश्चय ही इन्सानियत और भ्रातृ भाव के किनारे अवश्य मिलेंगे और साथ ही मिलेगा समृद्धि का हरा भरा जंगल, जहाँ इस घुटन और संत्रास के प्रदूषण का नाम तक न होगा। फिर एक अच्छा साहित्य 'वसुधैव कटुम्बकम' में और मानवता की भावना की सृष्टि करेगा। आओ! इस शुभ कामना से इस जुगनू की दस्तक का स्वागत करें।

दूसरी कविता **'जीने को कुछ मानी दे'** में भी ज़िन्दगी के नए अर्थ-नए मायने की कामना की है। कवि अपने मित्र, अपने साथी, अपने गुरु से, ज़िन्दगी के नए अर्थ नयी कहानी माँग रहा है। कुछ ऐसे तूफानी लम्हे जिससे ज़िन्दगी में एक नया परिवर्तन आ जाए। वह उससे सात समुन्दरों अर्थात समस्त वसुन्धरा की प्यास को समाप्त करने के लिए पानी माँग रहा है। उसका द्रवित मन ऐसे गीत की कामना कर रहा है जो जीवन को कुछ मायने दे सके और धरती के लिए समृद्धि रूपी धानी चूनर ला सके। कविता प्रतीकात्मक है। भाषा में प्रवाह है। बिम्ब योजना है।

जुगनू की दस्तक

नफरत की अन्धी गुफाओं में
कई बार काफ़ी होती है
एक जुगनू की भी दस्तक़
सम्भावनाओं की पतवारें
चलाते रहो साथियो !
किनारे आखिर नज़रों से
बच नहीं पाएंगे।
कितनी ही असीम हो
यह काली नदी
पर सीमाओं की मौजूदगी को
नकार तो नहीं पाएगी।
बस इन्हीं सीमाओं के आस पास
मौजूद हैं हरे भरे जंगल
जहाँ प्रदूषण का, कहीं दूर तक नाम नहीं है।
आइए करें कामना
साहित्य के अलाव की गर्मी से
अंकुरित हो नयी-पौध।

('दोस्त ! अब पर्दा गिराओ' से)

जीने को कुछ मानी दे

जीने को कुछ मानी दे
ऐसी एक कहानी दे।
सात समन्दर लेकर आ

प्यासा हूँ कुछ पानी दे।
धूप अभी तक नंगी है
इसको चूनर धानी दे।
भीगा है मन गाएगा
कोई गज़ल पुरानी दे।
दे कुछ तूँ रब्ब जैसा है
लम्हें कुछ तूफानी दे।

(‘दोस्त ! अब पर्दा गिराओ’ से)

शब्दार्थ

जुगनू –	प्रकाश व आशा का प्रतीक	दस्तक –	आगमन की आहट
असीम –	सीमा रहित	काली नदी –	आतंक व संत्रास का प्रतीक
अलाव –	आग का ढेर		
मानी –	मायने	प्रदूषण –	दूषित वातावरण
धानी चूनर –	समृद्धि का प्रतीक	लम्हें –	क्षण

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दे :

1. ‘जुगनू की दस्तक’ कविता का सार अपने शब्दों में लिखें।
2. ‘जुगनू की दस्तक’ एक आशावादी प्रतीकात्मक कविता है, स्पष्ट करें।
3. ‘जीने को कुछ मानी दे’ कविता में कवि क्या माँग रहा है? अपने शब्दों में लिखो।
4. ‘जीने को कुछ मानी दे’ कविता के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालें ।

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. यह काली नदी .... नयी पौध।
6. जीने को कुछ .... तूफानी दे।

*****

14. गीता डोगरा

गीता डोगरा का जन्म फिरोज़पुर, पंजाब में हुआ। इनका प्रमुख साहित्यिक योगदान इस प्रकार है --

काव्य संग्रह : अगले पड़ाव तक, धूप उदास है, दहलीज़ (प्रकाश्य)

सम्पादित पुस्तकें : पंजाब की श्रेष्ठ हिंदी कहानियाँ, रमेश बत्तरा की चर्चित कहानियाँ, काव्य संग्रह सप्त सिंधु (पंजाब की हिंदी आधुनिक कविता), शक्तिपुंज अटल बिहारी वाजपेयी (जीवन यात्रा), अब तुम्हारे हवाले वतन साथियो (आज़ादी की लड़ाई)

उपन्यास : बंद दरवाज़े

इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, रिपोर्ताज, राजनीतिक साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं। इन्हें रमेश चन्द्र अवार्ड (जालन्धर), काव्य कौस्तुभ पुरस्कार (गोवा में वहाँ के महामहिम राज्यपाल से), पंजाब कला साहित्य अकादमी अवार्ड, काव्य लेखन के लिए अरविन्द साहित्य पुरस्कार (मुम्बई से), दिशा साहित्य मंच पठानकोट से सम्मानित, पंजाब भाषा विभाग द्वारा 'पंजाब की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ' संकलन पर डॉ. इन्द्रनाथ मदान पुरस्कार, श्रेष्ठ हिन्दी लेखन दिसम्बर 2002 में सहस्रशताब्दी पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुरस्कार 2003 द्वारा सम्मानित किया गया है।

इनकी कुछ रचनाएँ बंगला, गुजराती व तमिल भाषा में अनूदित हुई हैं। इस समय आप दैनिक जागरण, जालन्धर में फीचर उप-सम्पादक के रूप में कार्यरत हैं।

पाठ परिचय

गीता डोगरा द्वारा रचित **'कच्चे रंग'** 'सप्त सिन्धु' काव्य संग्रह से संकलित है। इस कविता में कवयित्री ने इस भौतिकवादी संसार के बदलते परिवेश की स्थिति को स्पष्ट करने का यत्न किया है। उसे अफसोस है कि वह अपने अतीत से पूरी तरह टूट चुकी है और फिक्र है कि कहीं उसका भविष्य वर्तमान से भी कहीं टूट न जाये। सरल भाषा में प्रस्तुत यह रचना प्रतीकों व बिम्बों के सहारे इंसानी रिश्तों के महत्व को उजागर करने का प्रयत्न है।

कच्चे रंग

खो गया है मेरा गाँव
वह पगडंडी
देवदार के पेड़
वह जंगल भी
जहाँ से गुजरते गुजरते
कविता मुझ से मिली थी

अब शहर ......
सड़कें ... गलियाँ हैं
खो गए हैं पर्वत भी
जो गुपचुप आवाज़ देते थे मुझे
तो मैं थकी हारी
धूल सने पाँव सहित...
उसकी आगोश में सिमट जाती थी।

मेरा वह पुराना घर
नानकशाही ईंट वाला
जहाँ हर वर्ष बड़ी माँ
कच्चे रंगो से लिखती थी
सबका नाम...
प्यार से चूमती थी मेरा माथा
मेरे हाथ.....।

वे रिश्ते भी खो गए
अब रहता है वहाँ भी
सीमेंट पत्थर का आदमी
जो रिश्तों को तराजू पर
तोलता है
और पटक देता है....
छितरे-छितरे हो
मैं वहाँ से भी लौट आई।

सब कुछ तो बदल गया
जंगल पर्वत, पगडंडी
घर भी
शेष बची मैं।
आज भी खोजती हूँ कच्चे रंग
जिससे लिख पाऊँ
मैं उन सबके नाम
जो मेरे अपने हो सके
और सोचती हूँ
गल्ती से जन न बैठूँ
कोई सीमेंट पत्थर का आदमी
कि कहीं
मेरी बेटी भी छितरे छितरे हो
लौट जाए
मेरी दलहीज़ से....
सच कितना डरती हूँ मैं।

शब्दार्थ

आगोश	–	गोद
नानकशाही ईंटें	–	बहुत पुरानी छोटे आकार की ईंटें
जन न बैठूँ	–	जन्म न दे दूँ
दहलीज़	–	द्वार
सीमेंट पत्थर का आदमी	–	मुर्दादिल आदमी

अभ्यास

(क) लगभग 40 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'कच्चे रंग' कविता का सार अपने शब्दों में लिखो।
2. 'कच्चे रंग' कविता का शीर्षक कहाँ तक सार्थक है?
3. 'कच्चे रंग' कविता का भाव स्पष्ट करें।
4. 'कच्चे रंग' कविता में कौन-कौन से मानवीय रिश्तों का विवरण है?

(ख) सप्रसंग व्याख्या करें :

5. अब शहर .... सिमट जाती थी।
6. सब कुछ बदल गया .... कितना डरती हूँ मैं।

*****

निबन्ध भाग

15. अध्यापक पूर्ण सिंह

अध्यापक पूर्ण सिंह द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबन्धकार थे। इनका जन्म एक सिक्ख परिवार में सन् 1881 में सीमा प्रान्त के एटबाबाद ज़िले के सहहड़ गाँव में हुआ। ये एक मेधावी छात्र रहे। इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने छात्रवृत्ति पाकर टोकियो विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र का अध्ययन किया। वहाँ स्वामी रामतीर्थ से भेंट हुई। उनसे अत्यधिक प्रभावित होकर इन्होंने वहीं संन्यास ले लिया। स्वामी जी की मृत्यु के बाद विचारों में परिवर्तन हुआ। आपने विवाह करके गृहस्थ जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। मार्च 1931 में इनकी मृत्यु हो गई। इनका सम्बन्ध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के क्रान्तिकारी आन्दोलन से भी था। अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय इनकी जीवन दृष्टि की प्रमुख विशेषता है।

सरदार पूर्ण सिंह ने पंजाबी और अंग्रेज़ी में कोई डेढ़ दर्जन पुस्तकें लिखीं। इनके निबन्ध मुख्यत: 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'अमेरिका का मस्त योगी', 'वाल्टहिटमेन', 'कन्यादान', और 'पवित्रता' आदि हैं। इन्हीं निबन्धों के बल पर इन्होंने गद्य साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थायी स्थान बना लिया। इन्होंने निबन्ध रचना के लिए मुख्य रूप से नैतिक विषयों को ही चुना है। इनके निबन्ध भावात्मक कोटि में आते हैं।

इनकी भाषा प्रवाहमयी एवं लाक्षणिक शब्दावली से युक्त है। इनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और मानवीय कल्याण भावना से भावित है। इनका एक ही धर्म है – इन्सानियत। इनकी एक ही भाषा है –हृदय की भाषा। सच्चे मानव की खोज और सच्चे हृदय की भाषा की तलाश ही इनके साहित्य का लक्ष्य है।

पाठ परिचय

'सच्ची वीरता' अध्यापक पूर्ण सिंह का प्रथम निबन्ध है। इसमें लेखक ने अत्यन्त ओजस्वी शैली में सच्ची वीरता के लक्षणों, वीर पुरुष के उदात्त गुणों, वीरों के साहस तथा कायरों की

बुज़दिली का वर्णन किया है। लेखक ने अपनी भावपूर्ण शैली में समाज पर वीरता के शुभ प्रभाव का चित्रण किया है। सच्चा वीर पुरुष समुद्र की भान्ति गम्भीर तथा आकाश की तरह स्थिर व अचल होता है। वह सत्यव्रती, त्यागी तथा विचित्र होता है। सच्ची वीरता बनावट और दिखावे से कोसों दूर होती है। वीरता की कभी नकल नहीं हो सकती। वीरता देश काल के अनुसार जब जिस रूप में जन्म लेती है तो संसार उसके आगे सिर झुकाता है। हो सकता है कि उस युग में उसे बहुत कुछ सहन करना पड़े, लेकिन सच्चा वीर अन्ततः इतिहास पुरुष हो जाता है। ईसा मसीह, मीरा बाई, गुरु नानक देव इस प्रकार के उदाहरण हैं। लेखक ने ओसाका नगर के ओशियो की वीरता का भी एक उदाहरण दिया है।

प्रस्तुत निबन्ध की भाषा सरल, सरस व भावपूर्ण है। लेखक ने संवादों व दृष्टांतो के माध्यम से निबन्ध को सरल, रोचक व भावमय बनाया है। शैली धारा प्रवाह है - निबन्ध में उपदेशात्मकता का गुण भी विद्यमान है। इस प्रकार विषय और शैली की दृष्टि से प्रस्तुत निबन्ध मौलिक व बेजोड़ है।

सच्ची वीरता

सच्चे वीर पुरुष धीर, गम्भीर और आज़ाद होते हैं। उनके मन की गम्भीरता और शाँति समुद्र की तरह विशाल और गहरी या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकि जी ने कुम्भकरण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है। सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्त्वगुण के क्षीर-समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं। ऐसे लोग दुनिया के तख्ते को अपनी आँख की पलकों से हलचल में डाल देते हैं। जब ये शेर जागकर गरजते हैं, तब सदियों तक उनकी आवाज़ की गूँज सुनाई देती रहती है, और सब आवाज़ें बन्द हो जाती हैं। वीर की चाल की आहट कानों में आती रहती है और कभी मुझे और कभी तुझे मदमत्त करती है। कभी किसी की और कभी किसी की प्राण सारंगी वीर के हाथ में बजने लगती है।

सत्वगुण के समुद्र में जिनका अन्तःकरण निमग्न हो गया, वे ही महात्मा, साधु और वीर हैं। वे लोग अपने क्षुद्र जीवन का परित्याग कर ऐसा ईश्वरीय जीवन पाते हैं कि उनके लिए संसार के सब अगम्य मार्ग साफ हो जाते हैं। आकाश उनके ऊपर बादलों के छाते लगाता है। प्रकृति उनके मनोहर माथे पर राज-तिलक लगाती है। हमारे असली और सच्चे राजा ये ही साधु-पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चाँदी से ज़र्क-बर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजाओं को तो, जो गरीब किसानों की कमाई हुई, दौलत पर पिंडोपजीवी होते हैं, लोगों ने अपनी मूर्खता से वीर बना रखा है। ये ज़री, मखमल और ज़ेवरों से लदे हुए माँस के पुतले तो हरदम काँपते रहते हैं। इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान और बलवान होने पर भी दुनिया के ये छोटे 'जार्ज' बड़े कायर होते हैं। क्यों न हों, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं के बल की दौड़ लोगों के शरीर तक होती है। हाँ, कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलों पर होता है, तब इन कायरों की बस्ती में मानो एक सच्चा वीर पैदा होता है।

एक बाग़ी गुलाम और एक बादशाह की बातचीत हुई। यह गुलाम कैदी दिल से आज़ाद था। बादशाह ने कहा – 'मैं तुमको अभी जान से मार डालूँगा। तुम क्या कर सकते हो?' गुलाम बोला 'हाँ, मैं फाँसी पर तो चढ़ जाऊँगा, पर तुम्हारा तिरस्कार तब भी कर सकता हूँ।' बस, इस गुलाम ने दुनिया के बादशाहों के बल की हद दिखला दी। बस, इतने ही ज़ोर और इतनी

ही शेखी पर ये झूठे राजा शरीर को दु:ख देकर और मार-पीटकर अनजान लोगों को डराते हैं। भोले लोग उनसे डरते हैं। चूँकि सब लोग शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं, इसलिए जहाँ किसी ने उनके शरीर को अपने जीवन का केन्द्र समझते हैं, इसलिए जहाँ किसी ने उनके शरीर पर ज़रा ज़ोर से हाथ लगाया नहीं वे मारे डर के अधमरे हो जाते हैं। केवल शरीर-रक्षा के निमित्त ये लोग इन राजाओं की ऊपरी मन से पूजा करते हैं। जैसे ये राजा वैसा उनका सत्कार ! जिनका बल शरीर को ज़रा-सी रस्सी से लटकाकर मार देने भर ही का होता है। भला उनका और उन बलवान और सच्चे राजाओं का क्या मुकाबला, जिनका सिंहासन लोगों के हृदय-कमल की पंखुड़ियों पर होता है? सच्चे राजा अपने प्रेम के ज़ोर से लोगों के दिलों को सदा के लिए बाँध देते हैं। दिलों पर हुकूमत करने वाले वे फौज, तोप, बंदूक आदि के बिना ही शहंशाह-ज़माना होते हैं। मंसूर ने अपनी मौज में आकर कहा कि मैं खुदा हूँ। दुनिया के बादशाह ने कहा - 'यह काफिर है।' मगर मंसूर ने अपने कलाम को बन्द न किया। पत्थर मार-मारकर दुनिया ने उसके शरीर की बुरी दशा की, परन्तु उस मर्द के हर बाल से ही ये ही शब्द निकले: 'अनहलहक-अहं बह्मस्मि - मैं ही ब्रह्म हूँ।' मंसूर का सूली पर चढ़ना उसके लिए सिर्फ खेल था। बादशाह ने समझा कि मंसूर मारा गया।

अपने-आपको हर घड़ी और हर पल महान से भी महान बनाने का नाम वीरता है। वीरता के कारनामे तो एक गौण बात है। असल वीर तो इन कारनामों को अपनी दिनचर्या में लिखते भी नहीं। पेड़ तो ज़मीन से रस ग्रहण करने में लगा रहता है। उसे ख़्याल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे और कब लगेंगे। उसका काम तो अपने-आपको सत्य में रखना है-सत्य को अपने अन्दर कूट-कूटकर भरना है और अन्दर ही अन्दर बढ़ाना है। उसे इस चिन्ता से क्या मतलब कि कौन मेरे फल खाएगा, या मैंने कितने फल लोगों को दिए?

वीरता का विकास नाना प्रकार से होता है। कभी तो उसका विकास लड़ने-मरने में, खून बहाने में, तलवार-तोप के सामने जान गँवाने में होता है। कभी प्रेम के मैदान में उसका झंडा खड़ा होता हो। कभी जीवन के गूढ़ तत्व और सत्य की तलाश में बुद्ध जैसे राजा विरक्त होकर वीर हो जाते हैं। कभी किसी आदर्श पर और कभी किसी पर वीरता अपना फरहरा लहराती है। परन्तु वीरता एक प्रकार की दैवी प्रेरणा है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नया कमाल नज़र आया। एक नई रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता संसार में छा गई। वीरता हमेशा निराली और नई होती है। नयापन भी वीरता का एक खास रंग है। हिन्दुओं के पुराणों की वे आलंकारिक कल्पनाएँ, जिनमें पुराणकारों ने ईश्वरावतारों को अजीब-अजीब और भिन्न-भिन्न वेश दिए हैं, सच्ची मालूम होती हैं, क्योंकि वीरता का एक विकास दूसरे विकास

से कभी किसी तरह मिल नहीं सकता। वीरता की कभी नकल नहीं हो सकती, जैसे मन की प्रसन्नता कभी कोई उधार नहीं ले सकता। वीरता देश-काल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई, तभी वह एक नया स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गए, कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे उन्होंने सिर झुका दिया।

वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है। उसका मन सबका मन हो जाता है। उसके ख़्याल सबके ख़्याल हो जाते हैं। उसके संकल्प सबके संकल्प हो जाते हैं। उसका बल सबका बल हो जाता है। वह सबका और सब उसके हो जाते हैं।

वीरों को बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख़्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद-ब-खुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिए, बिना किसी के दूध पिलाए, बिना किसी के हाथ लगाए तैयार होते हैं। दुनिया के मैदान में अचानक ही सामने आकर वे खड़े हो जाते हैं। उनका सारा जीवन भीतर ही भीतर होता है। बाहर तो जवाहरात की खानों की ऊपरी ज़मीन की तरह कुछ भी दृष्टि में नहीं आता। वीर की ज़िन्दगी मुश्किल से कभी-कभी बाहर नज़र आती है, नहीं तो उसका स्वभाव छिपे रहने का है।

वह लाल गुदड़ियों के भीतर छिपा रहता है। कंदराओं में, गोरों में, छोटी-छोटी झोंपड़ियों में बड़े-बड़े वीर महात्मा छिपे रहते हैं। पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने से, विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस 'ड्राइंग हॉल' के वीर पैदा होते हैं। उनकी वीरता अनजाने लोगों से अपनी स्तुति सुनने तक खत्म हो जाती है। असली वीर दुनिया की बनावट और लिखावट की मखौलों के लिए नहीं जीते।

हर बार दिखाने और नाम की खातिर छाती ठोंककर आगे बढ़ना और फिर पीछे हटना पहले दर्जे की बुज़दिली है। वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन ज़रा सी चीज़ है। वह सिर्फ एक बार के लिए काफी है। मानो इस बन्दूक में एक ही गोली है। हाँ, कायर पुरुष इसको बड़ा ही कीमती और कभी न टूटने वाला हथियार समझते हैं। हर घड़ी आगे बढ़कर और यह दिखाकर कि हम बड़े हैं वे फिर पीछे इस गरजन से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और अधिक बड़े काम के लिए बच जाए। बादल गरज-गरज कर ऐसे ही चले जाते हैं, परन्तु बरसने वाले बादल ज़रा-सी देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।

कायर पुरुष कहते हैं – 'आगे बढ़े चलो।' वीर कहते हैं – 'पीछे हटे चलो।' कायर कहते हैं – 'उठाओ तलवार।' वीर कहते हैं – 'सिर आगे करो।'

वीर का जीवन प्रकृित ने अपनी शक्तियों को फजूल ही खो देने के लिए नहीं बनाया।

वीर पुरुष का शरीर कुदरत की कुल ताकतों की कुल ताकतों का भंडार है। कुदरत का यह मरकज़ हिल नहीं सकता। सूर्य का चक्कर हिल जाए तो हिल जाए, परन्तु वीर के दिल में जो दैवी केन्द्र है वह अचल है। वीर तो अपने अन्दर ही 'मार्च' करते हैं क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं।

बेचारी मरियम का लाडला, खूबसूरत जवान, अपने मद में मतवाला और अपने-आपको शँहशाह-हक़ीक़ी कहने वाला ईसा मसीह क्या उस समय कमज़ोर मालूम होता है, जब भारी सलीव पर उठ कर कभी वह गिरता, कभी जख्मी होता और कभी बेहोश हो जाता है? कोई पत्थर मारता है, कोई ढेला मारता है, कोई थूकता है, मगर उस मर्द का दिल नहीं हिलता। कोई क्षुद्र-हृदय और कायर होता, तो अपनी बादशाहत के बल की गुत्थियाँ खोल देता, अपनी ताकत को नष्ट कर देता और संभव है कि एक निगाह से उस सल्तनत के तख्ते को उल्ट देता और मुसीबत को टाल देता। परन्तु जिसको हम मुसीबत जानते हैं, उसको वह मखौल समझता था। 'सूली मुझे है सेज पिया की, सोने दो मीठी नींद है आती।' अमर ईसा को भला दुनिया के विषय-विकार में डूबे लोग क्या जान सकते थे? राणा जी ने ज़हर के प्याले से मीराबाई को डराना चाहा। मगर वाह री सच्चाई ! मीरा ने उस ज़हर को भी अमृत मान कर पी लिया। वह शेर और हाथी के सामने की गई। मगर वाह रे प्रेम! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पर मला और अपना रास्ता लिया। इस वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं, भीतर ध्यान करते हैं, मारते नहीं, मरते हैं।

बाबर के सिपाहियों ने और-और लोगों के साथ गुरु नानक को भी बेगार में पकड़ लिया। उनके सिर पर बोझ रखा और कहा - 'चलो।' आप चल पड़े। दौड़-धूप, बोझ, मुसीबत, बेगार में पकड़ी हुई स्त्रियों का रोना, शरीफ लोगों का दुःख, गाँव के गाँव जलना, सब किस्म की दुखदायी बातें हो रही हैं, मगर किसी का कुछ असर उन पर नहीं हुआ। गुरु नानक ने अपने साथी मर्दाना से कहा - 'सारंगी बजाओ, हम गाते हैं।' उस भीड़ में सारंगी बज रही है और आप गा रहे हैं। वाह री शाँति! अगर कोई छोटा-सा बच्चा नेपोलियन के कंधे पर चढ़कर उसके सिरे के बाल खींचे, तो क्या नेपोलियन इसको अपनी बेइज्जती समझकर उस बालक को ज़मीन पर पटक देगा, जिससे लोग उसको बड़ा वीर कहें? इसी तरह सच्चे वीर, जब उनके बाल दुनिया की चिड़ियाँ नोचती हैं, तब कुछ परवाह नहीं करते, क्योंकि उनका जीवन आस-पास वालों के जीवन से निहायत ही बढ़-चढ़कर ऊँचा और बलवान होता है। भला ऐसी बातों पर वीर कब हिलते हैं। जब उनकी मौज आई, तभी मैदान उनके हाथ है।

जापान के एक छोटे गाँव की एक झोंपड़ी में छोटे कद का एक जापानी रहता था। उसका

नाम ओशियो था। यह पुरुष बड़ा अनुभवी और ज्ञानी था। बड़े कड़े मिज़ाज का, स्थिर, धीर और अपने ख़यालात के समुद्र में डूबा रहने वाला पुरुष था। आस-पास के रहने वाले लोगों के लड़के इस साधु के पास आया-जाया करते थे और वह उनको मुफ़्त पढ़ाया करता था। जो कुछ मिल जाता वही खा लेता था। दुनिया की व्यावहारिक दृष्टि से वह एक किस्म का निखट्टू था, क्योंकि इस पुरुष ने संसार का कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसकी सारी उम्र शाँति, और सत्त्वगुण में गुजर गई थी। लोग समझते थे कि वह एक मामूली आदमी है। एक दफा इत्तिफाक से दो-तीन फसलों के न होने से इस फकीर के आस-पास के सारे मुल्क में दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्ष बड़ा भयानक था। लोग बड़े दु:खी हुए। लाचार होकर वे इस नंगे कंगाल फकीर के पास मदद माँगने आए। उसके दिल में कुछ ख़्याल आया। वह उनकी मदद करने को तैयार हो गया।

पहले वह ओसाका नामक शहर के बड़े-बड़े धनाढ्य और और भद्र पुरुषों के पास गया और उनसे मदद माँगी। इन भलेमानसों ने वादा तो किया, पर उसे पूरा न किया। ओशियो फिर उनके पास कभी न गया। उसने बादशाह के वज़ीरों को पत्र लिखे कि इन किसानों को मदद देनी चाहिए। परन्तु बहुत दिन गुज़र जाने पर भी जवाब न आया। ओशियो ने अपने कपड़े और किताबें नीलाम कर दीं। जो कुछ मिला, मुट्ठी भरकर उन आदमियों की तरफ फेंक दिया। भला इससे क्या हो सकता था? परन्तु ओशियो का दिल इससे पूर्ण शिव-रूप हो गया। यहाँ इतना जिक्र कर देना काफी होगा कि जापान के लोग अपने बादशाह को पिता की तरह पूजते हैं। उनके हृदय की यह एक वासना है। ऐसी कौम के हज़ारों आदमी इस वीर के पास जमा थे। ओशियो ने कहा – 'सब लोग हाथ में बाँस लेकर तैयार हो जाओ और बगावत का झंडा खड़ा कर दो।' कोई चूँ-चाँ न कर सका। बग़ावत का झंडा खड़ा हो गया।

ओशियो एक बाँस पकड़ कर सबके आगे टोकियो जाकर बादशाह के किले पर हमला करने के लिए चला। इस फकीर जनरल की फौज की चाल को कौन रोक सकता था? जब शाही किले के सरदार ने देखा तब उसने बादशाह को रिपोर्ट की और आज्ञा माँगी कि ओशियो और उसकी बाग़ी फौज पर बन्दूकों की बाढ़ छोड़ी जाए। हुक्म हुआ कि नहीं, ओशियो तो कुदरत के सब्ज वर्कों को पढ़ने वाला है। वह किसी खास बात के लिए चढ़ाई करने आया होगा। उसको हमला करने दो और आने दो। जब ओशियो किले में दाखिल हुआ। तब वह सरदार इस मस्त जनरल को पकड़कर बादशाह के पास ले गया। उस वक्त ओशियो ने कहा – 'वे राज-भंडार, जो अनाज से भरे हुए हैं, गरीबों की मदद के लिए क्यों नहीं खोल दिए जाते?'

जापान के राजा को डर-सा लगा। एक वीर उसके सामने खड़ा था, जिसकी आवाज़ में दैवी शक्ति थी। हुक्म हुआ कि शाही भंडार खोल दिए जाएँ और सारा अन्न दरिद्र किसानों को बाँट दिया जाए। सब सेना और पुलिस धरी की धरी रह गई। मंत्रियों के दफ्तर लगे के लगे रहे। ओशियो ने जिस काम पर कमर बाँधी, उसको कर दिखाया। लोगों की विपत्ति कुछ दिन के लिए दूर हो गई। ओशियो के हृदय की सफाई, सच्चाई और दृढ़ता के सामने भला कौन ठहर सकता था? सत्य की सदा जीत होती है। यह भी वीरता का एक चिह्न है। जय वहीं होती है, जहाँ पवित्रता और प्रेम है। दुनिया किसी कूड़े के ढ़ेर पर नहीं खड़ी है कि जिस मुर्ग ने बाँग दी वही सिद्ध हो गया। दुनिया धर्म और अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। जो अपने-आपको उन नियमों के साथ अभिन्न करके खड़ा हुआ वह विजयी हो गया। आजकल लोग कहते हैं कि काम करो, काम करो। पर हमें तो ये बातें निरर्थक मालूम होती हैं। पहले काम करने का बल पैदा करो, अपने अंदर ही अंदर वृक्ष की तरह बढ़ो।

अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल को उलटो और इस दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने-आपको न खो दो। वीर नहीं तो वीरों के अनुगामी हो और वीरता के काम नहीं तो धीरे-धीरे अपने अंदर वीरता के परमाणुओं को जमा करो।

जब हम कभी वीरों का हाल सुनते हैं तब हमारे अंदर भी वीरता की लहरें उठती हैं और वीरता का रंग चढ़ जाता है। परन्तु वह चिरस्थायी नहीं होता। उसका कारण सिर्फ यही है कि हमारे भीतर वीरता का मसाला तो होता नहीं, हम सिर्फ ख़्याली महल उसके दिखलाने के लिए बनाना चाहते हैं। टीन के बर्तन का स्वभाव छोड़कर अपने जीवन के केन्द्र में निवास करो और सच्चाई की चट्टान पर दृढ़ता से खड़े हो जाओ। अपनी ज़िन्दगी किसी और के हवाले करो, ताकि ज़िन्दगी को बचाने की कोशिशों में कुछ भी वक्त जाया न हो। इसलिए बाहर की सतह को छोड़कर जीवन के अन्दर की तहों में घुस जाओ, तब नये रंग खिलेंगे। द्वेष और भेद-दृष्टि छोड़ो, रोना छूट जाएगा। प्रेम और आनन्द से काम लो, शाँति की वर्षा होने लगेगी और दुखड़े दूर हो जाएँगे। जीवन के तत्व का अनुभव करके चुप हो जाओ, वीर और गम्भीर हो जाओगे। वीरों की, फकीरों की, पीरों की यह कूक है, 'हटो पीछे और अन्दर जाओ, अपने-आपको देखो, दुनिया और की और हो जाएगी। अपनी आत्मिक उन्नति करो।'

शब्दार्थ

सत्त्वगुण	-	रजो, सतो, तमोगुण में सात्विक (धार्मिक) प्रवृत्तियाँ
अन्त: करण	-	हृदय
अरण्य	-	जंगल
क्षुद्र हृदय	-	चंचल, कमज़ोर हृदय
इत्तिफाक	-	संयोग वश
दुर्भिक्ष	-	अकाल
मरकज़	-	केन्द्र स्थल
धनाढ्य	-	अमीर
हक़ीकी	-	असली, सच्चा

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. सच्चे वीर पुरुष का स्वभाव कैसा होता है?
2. 'वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है।' लेखक पूर्ण सिंह की इस उक्ति का क्या भाव है?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

3. 'सच्ची वीरता' निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखें।
4. जापान के ओशियो की वीरता का उदाहरण प्रस्तुत निबन्ध के आधार पर लिखो।
5. 'सच्चे वीर पुरुष मुसीबत को मखौल समझते हैं' ईसा मसीह, मीराबाई और गुरु नानक देव के जीवन से उदाहरण देते हुए प्रस्तुत निबन्ध के आधार पर स्पष्ट करें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. सच है, सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। वे सत्वगुण के क्षीर समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं रहती।

7. कायर पुरुष कहते हैं – 'आगे बढ़े चलो।' वीर कहते हैं – 'पीछे हटे चलो।' कायर कहते हैं – 'उठाओ तलवार।' वीर कहते हैं – 'सिर आगे करो।'

8. मगर वाह रे प्रेम! मस्त हाथी और शेर ने देवी के चरणों की धूल को अपने मस्तक पे मला और अपना रास्ता लिया। इसके वास्ते वीर पुरुष आगे नहीं, पीछे जाते हैं, भीतर ध्यान करते हैं, मारते नहीं, मरते हैं।

9. पेड़ तो ज़मीन से इसे ग्रहण करने में लगा रहता है, उसे ख्याल ही नहीं होता कि मुझमें कितने फल या फूल लगेंगे और कब लगेंगे।

*****

16. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 में गाँव आरत दूबे का छपरा ज़िला बलिया (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की तथा शांति निकेतन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पंजाब विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य किया। सन् 1979 में दिल्ली में उनका देहान्त हो गया।

साहित्य का इतिहास, आलोचना, शोध उपन्यास के क्षेत्र में द्विवेजी जी का योगदान विशेष उल्लेखनीय है।

अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क, कुटज, आलोक पर्व, बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, चारु चन्द्रलेख, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, हिंदी साहित्य की भूमिका, अनामदास का पोथा (उपन्यास), कबीर आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

उन्हें 'आलोक पर्व' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार और भारत सरकार द्वारा पद्‌मभूषण अलंकार से सम्मानित किया गया।

द्विवेदी जी ने साहित्य की अनेक विधाओं में उच्च कोटि की रचनाएँ कीं। उनके ललित निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं। जटिल, गम्भीर और दर्शन प्रधान बातों को सरल, सुबोध एवं मनोरंजक ढ़ंग से प्रस्तुत करना द्विवेदी जी के लेखन की विशेषता है। उनका रचनाकर्म एक सहृदय विद्वान का रचना कर्म है जिसमें शास्त्र के ज्ञान, परम्परा के बोध और लोक जीवन के अनुभव का सृजनात्मक सामंजस्य है।

द्विवेदी जी की सांस्कृतिक दृष्टि जबरदस्त है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ अंशों से उसका विकास हुआ है। उनकी मूल चेतना विराट मानवतावाद है जिसके संस्पर्श से कला और साहित्य ही नहीं, सम्पूर्ण जीवन ही सौंदर्य और आनन्द से झूम उठता है।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबन्ध **'क्या निराश हुआ जाए?'** डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी का मानवीय मूल्यों पर आधारित निबन्ध है। सरल भाषा में जीवन के सकारात्मक दृष्टिकोण को सामने रखती यह रचना प्रत्येक भारतीय के मन में एक नए विश्वास को जन्म देती है। निःसन्देह झूठ, फरेब और धोखाधड़ी की घटनाएँ बढ़ रही हैं – चोरी, तस्करी, भ्रष्टाचार और अधर्म की घटनाओं का चारों तरफ बोलबाला प्रतीत होता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सत्य, ईमानदारी और धर्म खत्म हो गया है – दया, कर्त्तव्य और निष्ठा जैसे शब्द अर्थहीन हो गए हैं – ऐसा कुछ नहीं है आज भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना है – आवश्यकता है तो अच्छाई को उजागर करने की – सच्चाई, हमदर्दी और इंसानियत की घटनाओं को सामने लाने की। दरअसल भारतवर्ष की संस्कृति में – संयम, दया और अध्यात्म विराजमान है – इसलिए लोभ-मोह-काम-क्रोध- आदि विकार संस्कृति की ऊपरी तह से भले छेड़छाड़ कर लें लेकिन भीतर तक उनके पहुँचने की आशा नहीं – इसलिए हताश या निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

क्या निराश हुआ जाए?

मेरा मन कभी-कभी बैठ जाता है। समाचार-पत्रों में ठगी, डकैती, चोरी, तस्करी और भ्रष्टाचार के समाचार भरे रहते हैं। आरोप-प्रत्यारोप का कुछ ऐसा वातावरण बन गया हैं कि लगता है, देश में कोई ईमानदार आदमी ही नहीं रह गया है। हर व्यक्ति संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है। जो जितने ही ऊँचे पद पर है, उनमें उतने ही अधिक दोष दिखाए जाते हैं ।

एक बहुत बड़े आदमी ने मुझसे एक बार कहा था कि इस समय सुखी वही है, जो कुछ नहीं करता, जो कुछ भी करेगा, उसमें लोग दोष खोजने लगेंगे। उसके सारे गुण भुला दिए जाएँगे और दोषों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाने लगेगा। दोष किसमें नहीं होते? यही कारण है कि हर आदमी दोषी अधिक दीख रहा है, गुणी कम या बिल्कुल ही नहीं। स्थिति अगर ऐसी है तो निश्चय ही चिन्ता का विषय है।

क्या यही भारतवर्ष है, जिसका सपना तिलक और गाँधी ने देखा था? रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मदनमोहन मालवीय का महान संस्कृति-सभ्य भारतवर्ष किस अतीत के गह्वर में डूब गया? आर्य और द्रविड़, हिन्दू और मुसलमान, यूरोपीय और भारतीय आदर्शों की मिलन-भूमि 'महामानव समुद्र' क्या सूख ही गया? मेरा मन कहता है ऐसा हो नहीं सकता। हमारे महान मनीषियों के सपनों का भारत है और रहेगा।

यह सही है कि इन दिनों कुछ ऐसा माहौल बना है कि ईमानदारी से मेहनत करके जीविका चलाने वाले निरीह और भोले-भाले श्रमजीवी पिस रहे हैं और झूठ तथा फरेब का रोज़गार करने वाले फल-फूल रहे हैं। ईमानदारी को मूर्खता का पर्याय समझा जाने लगा है, सच्चाई केवल भीरु और बेबस लोगों के हिस्से पड़ी है। ऐसी स्थिति में जीवन के महान् मूल्यों के बारे में लोगों की आस्था ही हिलने लगी है।

परन्तु ऊपर-ऊपर जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह बहुत ही हाल की मनुष्य-निर्मित नीतियों की त्रुटियों की देन है। सदा मनुष्य-बुद्धि नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए, नए सामाजिक विधि-निषेधों को बनाती है, उनके ठीक साबित न होने पर उन्हें बदलती है। नियम-

कानून सबके लिए बनाए जाते हैं। पर सबके लिए कभी-कभी एक ही नियम सुखकर नहीं होते। सामाजिक कायदे-कानून सभी युग-युग से परीक्षित आदर्शों से टकराते हैं, इससे ऊपरी सतह आलोड़ित भी होती है, पहले भी हुआ है, आगे भी होगा। उसे देखकर हताश हो जाना ठीक नहीं है।

भारतवर्ष ने कभी भी भौतिक वस्तुओं के संग्रह को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया है। उसकी दृष्टि से मनुष्य के भीतर जो महान् आंतरिक तत्त्व स्थिर भाव से बैठा हुआ है, वही चरम और परम है। लोभ-मोह, काम-क्रोध आदि विकार मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहते हैं। पर उन्हें प्रधान शक्ति मान लेना और अपने मन तथा बुद्धि को उन्हीं के इशारे पर छोड़ देना बहुत निकृष्ट आचरण है। भारतवर्ष ने कभी भी उन्हें उचित नहीं माना, उन्हें सदा संयम के बंधन से बाँधकर रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु भूख की उपेक्षा नहीं की जा सकती, बीमार के लिए दवा की उपेक्षा नहीं की जा सकती, गुमराह को ठीक रास्ते पर ले जाने के उपायों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हुआ यह है कि इस देश के कोटि-कोटि दरिद्रजनो ंकी हीन अवस्था को दूर करने के लिए ऐसे अनेक कायदे-कानून बनाए गए हैं, जो कृषि, उद्योग, वाणिज्य, शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थिति को अधिक उन्नत और सुचारू बनाने के लक्ष्य से प्रेरित हैं, परन्तु जिन लोगों को इन कार्यों में लगना है, उनका मन सब समय पवित्र नहीं होता। प्रायः ही वे लक्ष्य को भूल जाते हैं और अपनी ही सुख-सुविधा की ओर ज्यादा ध्यान देने लगाते हैं।

व्यक्ति-चित्त सब समय आदर्शों द्वारा चालित नहीं होता। जितने बड़े पैमाने पर इन क्षेत्रों में मनुष्य की उन्नति के विधान बनाए गए, उतनी ही मात्रा में लोभ, मोह जैसे विकार भी विस्तृत होते गए। लक्ष्य की बात भूल गई। आदर्शों को मजाक का विषय बनाया गया और संयम को दकियानूसी मान लिया गया। परिणाम जो होना था, वह हो रहा है। यह कुछ थोड़े-से लोगों के बढ़ते हुए लोभ का नतीजा है, परन्तु इससे भारतवर्ष के पुराने आदर्श और भी अधिक स्पष्ट रूप से महान और उपयोगी दिखाई देने लगे हैं।

भारतवर्ष सदा कानून को धर्म के रूप में देखता आ रहा है। आज एकाएक कानून और धर्म में अन्तर कर दिया गया। धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है। यही कारण है कि जो लोग धर्मभीरु हैं, वे कानून की त्रुटियों से लाभ उठाने में संकोच नहीं करते।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण खोजे जा सकते हैं कि समाज के ऊपरी वर्ग में चाहे जो भी होता रहा हो, भीतर-भीतर भारतवर्ष अब भी यह अनुभव कर रहा है कि धर्म कानून से बड़ी चीज़ है। अब भी सेवा, ईमानदारी, सच्चाई और अध्यात्मिकता के मूल्य बने हुए हैं। वे दब अवश्य गए हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुए। आज भी वह मनुष्य से प्रेम करता है। महिलाओं का सम्मान करता है, झूठ और चोरी को गलत समझता है दूसरे को पीड़ा पहुँचाने को पाप समझता है। हर आदमी अपने व्यक्तिगत जीवन में इस बात का अनुभव करता है। समाचार-पत्रों में जो भ्रष्टाचार के प्रति इतना आक्रोश है, वह यही साबित करता है हम ऐसी चीज़ों को गलत समझते हैं और समाज से उन तत्वों की प्रतिष्ठा कम करना चाहते हैं जो गलत तरीके से धन या मान संग्रह करते हैं।

दोषों का पर्दाफाश बुरी बात नहीं हैं। बुराई यह मालूम होती है कि किसी के आचरण के गलत पक्ष को उद्‌घाटित करते समय उसमें रस लिया जाता है दोषोद्‌घाटन को एकमात्र कर्त्तव्य मान लिया जाता है। बुराई में रस लेना बुरी बात है, अच्छाई को उतना ही रस लेकर उजागर न करना और भी बुरी बात हैं। सैंकड़ों घटनाएँ ऐसी घटती हैं, जिन्हें उजागर करने से लोक-चित में अच्छाई के प्रति अच्छी भावना जागती है।

एक बार रेलवे स्टेशन पर टिकट लेते हुए गलती से मैनें दस के बजाय सौ रुपए का नोट दिया और जल्दी-जल्दी गाड़ी में आकर बैठ गया। थोड़ी देर में टिकट बाबू उन दिनों के सेकंड क्लास के डिब्बे में हर आदमी का चेहरा पहचानता हुआ उपस्थित हुआ। उसने मुझे पहचान लिया और बड़ी विनम्रता के साथ मेरे हाथ में नब्बे रुपए रख दिए और बोला, ''बहुत बड़ी गलती हो गई थी। आपने भी नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा।'' उसके चेहरे पर विचित्र संतोष की गरिमा थी। मैं चकित रह गया।

कैसे कहूँ कि दुनिया से सच्चाई और ईमानदारी लुप्त हो गई है, वैसी अनेक अवांछित घटनाएँ भी हुई हैं परन्तु यह एक घटना ठगी और वंचना की अनेक घटनाओं से अधिक शक्तिशाली है।

एक बार मैं बस में यात्रा कर रहा था। मेरे साथ मेरी पत्नी और तीन बच्चे भी थे। बस में कुछ खराबी थी, रुक-रुककर चलती थी। गंतव्य से कोई पाँच मील पहले ही एक निर्जन सुनसान स्थान में बस ने जवाब दे दिया। रात के कोई दस बजे होंगे। बस में यात्री घबरा गए। कंडक्टर ऊपर गया और एक साइकिल लेकर चलता बना। लोगों को संदेह हो गया कि हमें धोखा दिया जा रहा है।

बस में बैठे लोगों ने तरह-तरह की बातें शुरू कर दीं। किसी ने कहा, ''यहाँ डकैती होती है, दो दिन पहले इसी तरह से एक बस को लूट लिया गया था।'' परिवार सहित अकेला मैं ही था। बच्चे पानी-पानी चिल्ला रहे थे। पानी का कहीं ठिकाना न था। ऊपर से आदमियों का डर समा गया था।

कुछ नौजवानों ने ड्राइवर को पकड़कर मारने-पीटने का हिसाब बनाया। ड्राइवर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लोगों ने उसे पकड़ लिया। वह बड़े कातर ढंग से मेरी ओर देखने लगा और बोला, ''हम लोग बस का कोई उपाय कर रहे हैं, बचाइए, ये लोग मारेंगे।'' डर तो मेरे मन में भी था, पर उसकी कातर मुद्रा देखकर मैंने यात्रियों को समझाया कि मारना ठीक नहीं है। परन्तु यात्री इतने घबरा गए कि वे मेरी बात सुनने को तैयार नहीं हुए। कहने लगे, ''इसकी बातों में मत आइए, धोखा दे रहा है। कंडक्टर को पहले ही डाकुओं के यहाँ भेज दिया है।''

मैं भी बहुत भयभीत था, पर ड्राइवर को किसी तरह मार-पीट से बचाया। डेढ़-दो घंटे बीत गए। मेरे बच्चे भोजन और पानी के लिए व्याकुल थे। मेरी और मेरी पत्नी की हालत बुरी थी। लोगों ने ड्राइवर को मारा तो नहीं, पर उसे बस से उतारकर, एक जगह घेर कर रखा। कोई भी दुर्घटना होती है तो पहले ड्राइवर को समाप्त कर देना उन्हें उचित जान पड़ा। मेरे गिड़गिड़ाने का कोई विशेष असर नहीं पड़ा। इसी समय क्या देखता हूँ कि एक खाली बस चली आ रही है और उस पर हमारा बस कंडक्टर भी बैठा हुआ है। उसने आते ही कहा, ''अड्डे से नई बस लाया हूँ, इस बस पर बैठिए। वह बस चलाने लायक नहीं है।'' फिर मेरे पास एक लोटे में पानी और थोड़ा दूध लेकर आया और बोला, ''पंडित जी। बच्चों का रोना मुझसे देखा नहीं गया। वहीं दूध मिल गया, थोड़ा लेता आया।'' यात्रियों में फिर जान आई। सबने उसे धन्यवाद दिया। ड्राइवर से माफी माँगी और बारह बजे से पहले ही सब लोग बस-अड्डे पहुँच गए।

कैसे कहूँ कि मनुष्यता एकदम समाप्त हो गई। कैसे कहूँ कि लोगों में दया-माया रह ही नहीं गई। जीवन में न जाने कितनी ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिन्हें मैं भूल नहीं सकता।

ठगा भी गया हूँ, धोखा भी खाया है, परन्तु बहुत कम स्थलों पर विश्वासघात नाम की चीज़ मिलती है। केवल उन्हीं बातों का हिसाब रखो, जिनमें धोखा खाया है तो जीवन कष्टकर हो जाएगा, परन्तु ऐसी घटनाएँ भी बहुत कम नहीं हैं जब लोगों ने अकारण सहायता की है, निराश मन को ढाढस दिया है और हिम्मत बँधाई है। कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक

प्रार्थना गीत में भगवान से प्रार्थना की थी कि संसार में केवल नुकसान ही उठाना पड़े, धोखा ही खाना पड़े तो ऐसे अवसरों पर भी हे प्रभो! मुझे ऐसी शक्ति दो कि मैं तुम्हारे ऊपर संदेह न करूँ।

मनुष्य की बनाई विधियाँ गलत नतीजे तक पहुँच रही हैं तो इन्हें बदलना होगा। वस्तुतः आए दिन इन्हें बदला ही जा रहा है। लेकिन अब भी आशा की ज्योति बुझी नहीं है। महान् भारतवर्ष को पाने की संभावना बनी हुई है, बनी रहेगी।

मेरे मन! निराश होने की ज़रूरत नहीं है।

शब्दार्थ

तस्करी - चोरी का कार्य, चोरी छिपे दूसरे देश की वस्तु अपने देश में या अपने देश की वस्तु दूसरे देश में ले जाना

भ्रष्टाचार - बुरा आचरण

पर्दाफाश करना - भेद प्रकट करना

आरोप-प्रत्यारोप - एक दूसरे पर दोष लगाना

उद्घाटित करना - खोलकर सामने रखना

अतीत - बीता हुआ समय

दोषोद्घाटन - दोषों को खोलना

गह्वर - खोह, गुफा

उजागर करना - प्रकाशित करना

माहौल - वातावरण

अवांछित - न चाहने योग्य, जो पसन्द न हो

निरीह - बेचारा, निर्दोष

गंतव्य - पहुँचने का लक्ष्य स्थान

आस्था - श्रद्धा, विश्वास

कातर - अधीर, व्याकुल,भयभीत

आलोड़ित - मथा हुआ

श्रमजीवी - मज़दूर

स्थिर - जो हिलता-डुलता नहीं, अडिग

मनीषियों - विद्वानों

परीक्षित - जिसकी परीक्षा ली गई हो

वाणिज्य - व्यापार

विधि-निषेध - कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, यह करो वह न करो का आदेश

विकार - बिगड़ा हुआ रूप, दोष, बुराई

आक्रोश - क्रोध

संग्रह - इकट्ठा करना, एकत्रित करना

निकृष्ट - बुरा, खराब, नीच

दकियानूसी - पुराने ख्याल का, पुराणपंथी

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. आजकल चिन्ता का कारण क्या है?
2. जीवन के महान मूल्यों के बारे में लोगों की आस्था क्यों हिलने लगी है?
3. ये कौन से विकार हैं जो मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहते हैं?
4. धर्म और कानून में क्या अन्तर है?
5. किसी ऐसी घटना का वर्णन करो जिससे लोक चित्त में अच्छाई का भावना जाग्रत हो।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में लिखो :

3. 'क्या निराश हुआ जाए?' निबन्ध का सार लिखो।
4. इस निबन्ध में द्विवेदी जी ने कुछ घटनाएँ दी हैं जो सच्चाई और ईमानदारी को उजागर करती हैं। उनमें से किसी एक घटना का वर्णन अपने शब्दों में करें।
5. मानवीय मूल्य से संबंधित यदि कोई ऐसी ही घटना आपके साथ घटित हुई हो, तो उसका वर्णन अपने शब्दों में करें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

1. "जीवन के महान मूल्यों के बारे में आस्था ही हिलने लगी है?"
2. "धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है।"
3. "अच्छाई को उजागर करना चाहिए, बुराई में रस नहीं लेना चाहिए।"
4. "सामाजिक कायदे कानून..........उसे देखकर हताश हो जाना ठीक नहीं।"

*****

17. विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर का जन्म जून 1912 को मुजफ्फरनगर के एक गाँव में हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० करने के पश्चात् हरियाणा में सरकारी सेवा में आ गए। आपके जीवन पर आर्य समाज तथा महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव है।

नौकरी के साथ-साथ वे साहित्य सृजन में भी संलग्न रहे। पर्याप्त समय तक वे आकाशवाणी से सम्बद्ध रहे और नाटक विभाग के निर्देशक भी रहे। जीवन साहित्य और बाल भारती पत्रिकाओं का सम्पादन भी इन्होंने किया। बंगला साहित्य के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरत् चन्द्र की प्रामाणिक जीवनी लिखी, जिसका नाम उन्होंने 'आवारा मसीहा' रखा।

विष्णु प्रभाकर ने अनेक कहानियाँ, नाटक, उपन्यास और निबन्ध लिखे हैं। साहित्य सेवा के लिए उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

आपकी रचनाओं में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार का स्वर प्रमुख रहा है ।

उनकी प्रमुख रचनाएँ है : ढलती रात, स्वप्नमयी (उपन्यास), संघर्ष के बाद (कहानी संग्रह), नव प्रभात, डॉक्टर (नाटक), प्रकाश और परछाइयाँ, बारह एकांकी, अशोक (एकांकी संग्रह), जाने अनजाने (संस्करण और रेखाचित्र), आवारा मसीहा (शरत् चन्द्र की जीवनी)।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबन्ध '**अगर ये बोल पाते : जलियाँवाला बाग़**' आत्मपरक शैली में लिखा गया है। इसमें जलियाँवाले बाग़ ने अपनी दर्दभरी कहानी इस तरह बयान की है कि पाठक की आँखों के सामने जलियाँवाले बाग़ में हुए नरसंहार का चित्र स्वत: ही दिखायी देने लगता है। जलियाँवाला बाग़ कहता है कि मेरे ऊपर जो अत्याचार हुआ, उसकी मिसाल शायद सारे संसार में नहीं है। वह आगे कहता है कि किस तरह मेरी आँखों के सामने हज़ारों निहत्थे लोगों को जनरल डायर ने गोलियों से भून दिया। इस गोलाबारी ने सिक्ख, हिन्दू, मुसलमान, मर्द, औरत, बच्चे सभी को मौत की गोद में सुला दिया। मेरा सारा शरीर लाशों से भर दिया। मेरे आँगन में हुए इस बलिदान की नींव पर ही स्वतंत्रता का महल खड़ा हुआ। आओ! मेरे आँगन में हुए शहीदों को याद करें और उनके द्वारा दी गई स्वतंत्रता की रक्षा करें।

निस्संदेह विष्णु प्रभाकर ने इस निबंध में बड़े प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी ढंग से पंजाब की कभी भी न भूलने वाली उस ऐतिहासिक घटना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। जिसने भारत को आज़ाद करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्रस्तुत निबंध की भाषा सरल, सरस एवं भावपूर्ण है। निबंध की शैली में प्रवाह है। ऐतिहासिक घटना के चित्रण में चित्रात्मकता का गुण निबंध की मुख्य विशेषता है।

अगर ये बोल पाते : जलियाँवाला बाग़

मैं अभी यह सोच ही रहा था कि क्या यह संभव हो सकता है कि जलियाँवाला बाग़ बोल उठे, तभी क्या देखता हूँ कि मेरी आँखों के आगे एक प्रकाश-सा चमका। मेरे कानों में आवाज़ आई – 'सुनों, मैं जलियाँवाला बाग़ ही बोल रहा हूँ।'

मैंने अपने चारों ओर देखा। कहीं कुछ नहीं था। लेकिन वह धीर-गंभीर दर्द भरी आवाज़ मेरे कानों में बराबर गूँज रही थी। उसने कहा, 'तुम सोच रहे होगे कि मेरे आँगन में इतना बड़ा हत्याकांड हुआ, उसे देखकर मैं बोल कैसे सकता हूँ। सचमुच उस दिन मैं स्तब्ध रह गया था। बोलना तो दूर, मैं उस दृश्य को देख भी नहीं सकता था। मैं जैसे बेहोश हो गया था। लेकिन मैं भाग भी तो नहीं सकता था। विवश होकर मुझे वह देखना पड़ा और वह सुनना पड़ा जिसकी मिसाल शायद मेरे संसार में नहीं है।'

'रविवार का दिन, वैशाखी का त्योहार, 13 अप्रैल सन् 1919 समय संध्या के साढ़े चार बजे। मेरे आँगन में एक सभा का आयोजन हुआ था। उस समय शहर की जो बुरी स्थिति थी उसी पर वे विचार करना चाहते थे और चाहते थे शाँति स्थापना के साधनों की खोज। वे सब लोग बहुत गंभीर थे। किसी प्रकार की शरारत करना वे किसी भी तरह नहीं चाहते थे। इस सभा का ऐलान पहले ही दिन कर दिया गया था। उसी दिन शाम को सरकार ने मार्शल लॉ का ऐलान कर दिया। सरकार पंजाब के प्यारे नेताओं को पहले ही जेल में बंद कर चुकी थी। डॉ. गुरुबख़्श राय ने यह सभा बुलाई थी। उन्होंने लोगों से कहा कि मार्शल लॉ का ऐलान हो चुका है, सभा बंद कर दी जाए। लेकिन लोग नहीं माने।'

'मैं देख रहा था। मेरा आँगन पूरी तरह भरा हुआ था। डॉ. किचलू का चित्र कुर्सी पर रखा था। डॉ. गुरुबख्श राय ने ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते हुए पहला प्रस्ताव पेश किया। यह एक परिपाटी बन गई थी। लोग रोलेट एक्ट के कारण बड़े दुःखी थे। गाँधी जी ने हड़ताल का ऐलान कर दिया था। सारे देश में 'न भूतो न भविष्यति' ऐसी हड़ताल हुई थी। फिर भी उन्होंने राजभक्ति का प्रस्ताव पास किया। इसके बाद वैद्य दुर्गादास दूसरा प्रस्ताव पढ़ने के लिए खड़े हुए। इसमें सरकार की इस बात की निंदा की गई थी कि उसने जनता

पर जुल्म किए हैं। लेकिन अभी प्रस्ताव की दो पंक्तियाँ भी नहीं पढ़ी गई थीं कि तूफ़ान आ गया।'

'मैं देख रहा था कुछ दूरी पर घुड़सवार पुलिस, उसके पीछे फौजी गाड़ी में बैठा जनरल डायर, उसके पीछे मशीनगनें, तोप ले जाने वाली गाड़ियाँ और फिर मार्च करती हुई फौजें – सब चले जा रहे थे। उनके बूटों की आवाज़ मेरे कानों में गूँज रही थी। हाल्ट का आदेश मिलने पर कर्णभेदी निनाद हुआ। मेरे आँगन में आने का दरवाज़ा बहुत छोटा था। मशीनगनें अंदर नहीं जा सकती थीं। उन्हें बाहर छोड़कर सैनिक अंदर आए और मोरचा लगाने लगे। घुटने झुकाकर उन्होंने बंदूको में कारतूसें भरी।'

'मैं हतप्रभ समझ नहीं पा रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। लोगों की दृष्टि उस ओर उठी। वे फुसफुसाए – 'फौज आ गई। फौज आ गई।' कि उसी क्षण बिना कोई चेतावनी दिए जनरल डायर चिल्लाया – 'फायर।' दूसरे ही क्षण गोलियाँ बरसने लगीं। लगभग पच्चीस हजार नागरिकों की शाँत और निहत्थी सभा इस अप्रत्याशित आक्रमण से स्तब्भ रह गई। क्षण भर में हताहतों की चीख-पुकार, लहूलुहान कपड़े, लाशों से पटती धरती, प्राण-रक्षा के लिए भागते भयाक्राँत नागरिक और गोलयों की बौछार पर बौछार। ऊपर उड़ता एक हवाई जहाज़ – पाश्व सत्ता का प्रतीक, नीचे मैं – चारों ओर से मंजिलों, इमारतों से घिरा हुआ। बाहर निकलने के एकमात्र मार्ग पर फौजी पहरा और ऊपर चबूतरे से गोली बरसाती फौज। काश, मैं गोलियों और जनता के बीच अड़ जाता। पर मैं तो जड़ बनकर रह गया था।

'मैं ठीक-ठाक देख भी नहीं पा रहा था। फौज को देखकर जब लोग फुसफुसाए थे तब किसी ने कहा था, 'भाइयो, शाँत रहो। वे हम निहत्थों को नहीं मारेंगे।' जब गोलियाँ बरसीं तब भी उसने कहा, 'घबराओ नहीं वे हवा में फायर कर रहे हैं।' लेकिन तभी मैंने क्या देखा, बारह वर्ष का एक छोटा सा बालक मदनमोहन गोली खाकर धराशायी हो गया। फिर दूर छज्जे पर बैठा एक बालक और गिरा। पहले शहीद यही दो बालक हुए थे। बहुत से लोग नीचे लेट गए उसी समय जनरल ने हुक्म दिया – 'गोली नीचे चलाओ। बंदूकें नीचे कर लो।' वे गोलियाँ घनी भीड़ को छेदने लगीं। एक साथ कितने ही व्यक्तियों को उन्होंने भून दिया । मैंने देखा कि एक वृक्ष के पीछे लगभग बारह व्यक्ति जा छिपे थे। सैनिकों ने एक-एक करके उन सबको मार डाला।'

जिधर भी लोग जाते, गोलियाँ उन्हें तलाश कर लेतीं। भागते हुए लोग, लेटे हुए लोग, दीवारों पर चढ़ते लोग, चीखते-चिल्लाते लोग, स्तब्ध हो गए लोग : कोई भी बच नहीं सका । घायलों की चीख-पुकार से मेरे कान फट रहे थे। वे मेरी दीवारों पर चढ़ने की कोशिश रहे

थे। दोनों ओर लाशों के ढेर थे। बहुत से लोग भीड़ में कुचल गए थे। ओह! वह दृश्य देखकर मैं काँप गया। लाशों पर पैर रखकर लोग दीवार को फांद रहे थे। मेरे आँगन में एक कुआँ था। घबराकर लोग उसमें कूद पड़े। फिर जो कूदने वालों का ताँता लगा तो वे उसमें गिरते, कुचले जाते और मर जाते।

'यह सब दस मिनट में हो गया। मैंने आँखें खोलीं। गोली बंद हो चुकी थी। पलटन भी लौट गई थी। लेकिन लोग अब भी प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। संकरे रास्तों पर बेतहाशा भीड़ भरी जा रही थी। मेरा अंतर हाहाकार और करुण क्रंदन से भरा हुआ था। मुझे लग रहा था जैसे संसार चीत्कार कर रहा है, लेकिन किसी को कोई देखने वाला नहीं था। मरते हुए व्यक्तियों की सिसकियाँ और आहें बता रही थी कि जैसे चारों ओर मौत का साम्राज्य है। मेरा सारा शरीर गोलियों से छलनी हो चुका था, लेकिन मैं आसानी से मरने वाला नहीं था। काश, यदि मर जाता तो यह दृश्य तो नहीं देख पाता !'

'और शाँति के बाद का वह भयानक दृश्य। लाशों और घायलों का वह ढेर। कहीं कोई टाँग ऊपर उठती, कहीं कोई हाथ काँपता, कहीं 'पानी' की करूण चीत्कार, उभरती दर्द की सिसकारी, प्राणों को चीर देने वाली आह! और फिर सब कुछ शाँत हो जाता। मेरा सारा मैदान घड़ियों, फाउंटेन पेनों और आभूषणों से भर गया था।

'अंधेरा उतरता आ रहा था। डरते-काँपते लोग धीरे-धीरे मेरे आँगन में पहुँचने लगे। उन्हें अपने रिश्तेदार और मित्रों की तलाश थी। मैंने लाला गिरधारी लाल को देखा। वे पंजाब चैंबर ऑफ कॉमर्स के डिप्टी चेयरमैन थे। उनका चेहरा पीला पड़ गया था। उन्होंने लाशों के ढेर को टटोला। वे ठिठके। उनके सामने उनके भतीजे रामलुभाया की लाश पड़ी थी। उसका शरीर गोलियों से छलनी हो गया था। सिर फट गया था। सत्रह वर्ष के उस नवयुवक ने अभी आठवीं की कक्षा पास की थी।

'मुझे अब तक याद है उस सिख युवक की, जिसकी आँते बाहर बिखरी रही थीं और जो चिल्ला रहा था, 'गुरु के नाम पर मुझे मार डालो।' लेकिन किसी ने उसकी ओर नहीं देखा। मैंने एक हिंदू युवक को देखा, जो चुपचाप रोता हुआ अपने भाई की लाश को पीठ पर लादे जा रहा था। उसका दिमाग बाहर निकल आया था। उसकी टाँग लटक रही थी। मैंने एक मुसलमान वृद्ध को देखा। उसके इकलौते बेटे की लाश उसके सामने थी। उसकी आँखों के आँसू सूख गए थे। उनमें आग बरस रही थी। मैंने बाद में सुना, खून से सने अपने बेटे के कपड़ों को उसने इसलिए रख छोड़ा था कि वे उसके पोतों को बराबर याद दिलाएँ कि आज़ादी हासिल करने के लिए मादरे वतन की सरजमीं को अपने खून से सींचा जाता है ।'

'और मुझ उस वीरांगना की भी याद है, जो रात के उस भयानक अंधेरे में अपने पति की लाश ढूँढने वहाँ आई थी और सारी रात उन लाशों के बीच उसको अपनी गोद में रखे पत्थर की मूर्ति बनी वहाँ बैठी रही थी। मैंने असंख्य व्यक्तियों को देखा है, पर ऐसी गरिमामयी नारी को कभी नहीं देखा।

उस दृश्य को देखकर मैं, पत्थर-दिल भी, पागल हो उठा था और बारह साल का वह लड़का, जिसकी गोद में तीन साल की एक बच्ची थी, दोनों गोली का शिकार हो गए थे। वह बच्ची अब भी उसकी गोद में थी।'

'इस कहानी का कोई अंत नहीं है। लेकिन इस लोमहर्षक और बर्बर हत्याकांड के कारण ही इस देश की आज़ादी की लड़ाई तीव्र हुई और गाँधीजी ने अंग्रेज़ों के उस साम्राज्य को, जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, डगमगा दिया था। बलिदान के बिना आकाँक्षाएँ कभी पूरी नहीं होतीं। मेरे आँगन में होने वाले उस महान बलिदान की नींव पर ही स्वाधीनता का यह महल खड़ा हुआ है। इसलिए तो मैं आज भी जीवित हूँ। आज मेरा रूप देखकर तुम मुझे पहचान नहीं पाओगे, लेकिन काश, कोई उस दिन के उस रूप को चित्रित कर पाता। मुझे गर्व है कि अंत में मेरा देश आज़ाद हुआ। आओ, हम सब उस बलिदान को कभी न भूलें। मेरा रूप भले ही संवारें, लेकिन मेरे आँगन में जो दीवाने सोए हुए हैं उनको याद करके देश की पवित्र स्वाधीनता की रक्षा करें।'

शब्दार्थ

स्तब्ध - गतिहीन

ऐलान - सार्वजनिक घोषणा

न भूतो न भविष्यति - न कभी हुआ है और न कभी होगा

हाल्ट - रुकना

निनाद - ध्वनि

हताहत - मारे गये और घायल

लोमहर्षक - रोमाँचकारी

मिसाल - उदाहरण

परिपाटी - चला आता हुआ क्रम, सिलसिला

कर्णभेदी - कानों को चुभने वाला

हतप्रभ - हताश, जिसकी काँति क्षीण हो गई हो

वीराँगना - बहादुरी स्त्री

अप्रत्याशित- जिसकी आशा न रही हो, आकस्मिक

बर्बर - असभ्य

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :-

1. जलियाँवाले बाग में सभा का आयोजन किस उद्देश्य से किया गया?
2. ब्रिटिश फौज के बाग में प्रवेश का चित्रात्मक वर्णन करो।
3. जलियाँवाले बाग में गोलियों की बौछार से बचने के लिए लोगों ने क्या किया?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :-

4. जलियाँवाला बाग़ में हुआ नरसंहार एक अमानवीय घटना थी। स्पष्ट करें ।
5. लेखक ने जलियाँवाले बाग़ में घायल हुए लोगों की तथा मृत लोगों के परिजनों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण किया है स्पष्ट करें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करो :-

1. ऊपर उड़ता हुआ एक हवाई जहाज़ – पाश्व सत्ता का प्रतीक, नीचे मैं .... मैं तो जड़ बनकर रह गया था।
2. मरते हुए व्यक्तियों की सिसकियाँ और आहें बता रही थीं कि .... वह दृश्य तो नहीं देख पाता।

*****

18. श्री मन्नारायण

श्रीमन्नारायण का जी का जन्म सन् 1912 में इटावा में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता और प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। एम. ए. पास करने के बाद आप 'सबकी बोली' तथा 'राष्ट्रभाषा प्रचार' के सम्पादक रहे। बाद में आप राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के महामंत्री भी रहे।

आप राष्ट्रीयता एवं गाँधीवादी विचारधारा से विशेषतया प्रभावित थे। काँग्रेस के आंदोलनों में आप आरम्भ से ही सक्रिय भाग लेते रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आप उसके महामंत्री पद पर कार्य करते रहे। वस्तुतः गाँधीवादी आर्थिक सिद्धान्तों के विशेषज्ञ होने के कारण आपको योजना आयोग का सदस्य भी मनोनीत किया गया।

राजनैतिक जीवन के साथ-साथ आरम्भ से ही आपकी साहित्य में रुचि रही है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से जहाँ राष्ट्रभाषा के प्रचार व प्रसार का कार्य करते रहे, वहीं पत्रकारिता के माध्यम से अपनी साहित्यिकता को भी अभिव्यक्ति देते रहे। 'रोटी का राग', 'मानव', 'सेगांव का संत' आदि इनके काव्य संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त दैनिक जीवन की व्यावहारिक घटनाओं को देखकर आपने बहुत से छोटे-छोटे शिक्षाप्रद एवं प्रेरक निबन्ध भी लिखे हैं। आपकी भाषा सरल एवं स्पष्ट तथा शैली प्रवाहमयी है। आपका व्यंग्य शिष्ट एवं प्रभावोत्पादक है ।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबंध **'समय नहीं मिला'** में लेखक ने समय के सदुपयोग के महत्व पर प्रकाश डाला है। लेखक ने बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से उन लोगों पर करारा प्रहार किया है जिन्हें हमेशा बहानेबाजी की आदत होती है। लेखक ने यह भी स्पष्ट किया है कि जो लोग समय पर काम करते हैं उनका जीवन नियमित और व्यवस्थित रहता है। आलसी व निकम्मे लोग ही अपनी अव्यवस्था को छिपाने के लिए 'समय नहीं मिला' का बहाना करते हैं। जहाँ एक ओर लेखक ने समय को बर्बाद करने वालों को सावधान किया है वहीं जो लोग समय का सदुपयोग करते हैं, उन्हें मुबारकबाद भी दी है। प्रस्तुत निबंध पाठकों को अपने भीतर झाँकने के लिए मजबूर करता है कि क्या वे समय का सदुपयोग करते हैं?

समय नहीं मिला

''मुझे आपका काम बराबर याद था, पर क्या करूँ बिल्कुल समय ही नहीं मिला। क्षमा करें।''

'' ख़ैर कोई बात नहीं, पर फिर कब हाज़िर होऊँ?''

'' कल इसी वक्त आ जाइए। आज ज़रूर समय निकालने की कोशिश करूँगा।''

कुछ इसी तरह की बातें न मालूम कितने लोगों को सुननी पड़ती हैं, पर अकसर न कल कभी आया और न महाशय जी को काम पूरा करने का वक्त ही मिला। हो सकता है कि वे सचमुच ही काफ़ी व्यस्त रहते हों और उन्होंने समय निकालने का प्रयत्न भी किया हो, पर ज्यादातर लोग कुछ न करते रहने में ही मशगूल रहा करते हैं और टालमटोल करने की आदत ही पड़ जाती है।

'' आपका पत्र यथासमय मिल गया था, पर इन दिनों बहुत काम रहने के कारण मैं जल्दी जवाब न दे सका। क्षमा करें।'' इस तरह के पत्रों की संख्या बेशुमार रहती है। इस प्रकार लिखने का कुछ फैशन ही हो गया है पर लोग भूल जाते हैं कि अगर बड़े आदमियों को वक्त न मिलने की वज़ह से पत्रों का उत्तर देने में देर हो जाती है तो इसका यह मतलब नहीं कि जो व्यक्ति खतों का जवाब देरी से देता है वह इसी कारण बड़ा बन जाता है। मेरा तो यह भी अनुभव है कि जो लोग सचमुच बड़े हैं और बहुत व्यस्त रहते हैं उनका पत्र-व्यवहार भी बहुत व्यवस्थित रहता है। उनका जीवन नियमित रहता है और वे रोज़ का काम उसी दिन समय पर निपटा देते हैं। अगर किसी सज्जन का जवाब मुझे वक्त पर नहीं मिलता है तो मैं यह समझ लेता हूँ कि शायद डाक-घर की कुछ गलती से पत्र ही देर में पहुँचा, या न भी पहुँचा हो या फिर महाशय जी का जीवन ही अस्त-व्यस्त और ढीला होगा। वे पत्र पढ़कर कहीं इधर-उधर डाल देते होंगे और या तो फिर उन्हें जवाब देने का ख़्याल अक्सर नहीं रहता होगा उत्तर देने के वक्त पत्र ही नहीं मिलता होगा। जो हो, समय न मिलने का बहाना अक्सर अपनी कमज़ोरी और अनियमितता को ढाँपने के लिए दिया जाता है और तारीफ की बजाय यह एक शर्म की बात समझनी चाहिए, समय का अपमान करके न कोई बड़ा बन सका है और न बन सकेगा।

एक बार अंग्रेज़ी के मशहूर साहित्य-सेवी डॉ. जॉनसन के पास उनका एक मित्र आया और अफ़सोस जाहिर करने लगा कि उसे धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने के लिए समय ही नहीं मिलता ।

''क्यों?'' डॉ. जॉनसन ने पूछा।

''आप ही देखिये, दिन-रात मिलाकर सिर्फ चौबीस घंटे होते हैं, उनमें से आठ घंटे तो सोने में ही निकल जाते हैं।''

''पर यह बात सभी के लिए लागू है।'' डॉ. जॉनसन ने कहा।

''और करीब आठ ही घंटे ऑफिस में काम करना पड़ता है।''

''और बाकी आठ घंटे?'' डॉ०जानसन ने कहा।

''इन्हीं आठ घंटो में खाना-पीना, हजामत बनाना, नहाना-धोना, ऑफिस आना-जाना इत्यादि-इत्यादि कितने काम रहते हैं। मैं तो बड़ा परेशान हूँ।''

''तब तो मुझे भी अब भूखों मरना पड़ेगा।'' डॉ. जॉनसन एक गहरी साँस लेकर बोले ।

''क्यों? क्यों?'' उनके मित्र ने तुरन्त पूछा।

''मैं काफी खाने वाला आदमी हूँ और अन्न उपजाने के लिए दुनिया में एक-चौथाई ही तो ज़मीन है, तीन चौथाई तो पानी ही है और संसार में मेरे जैसे करोड़ों लोग हैं जिन्हें अपना पेट भरना पड़ता है।''

''पर इतने लोगों के लिए फिर भी ज़मीन काफी है।''

''काफी कहाँ है? इस एक चौथाई ज़मीन में कितने पहाड़ हैं, उबड़-खाबड़ स्थल हैं, नदी नाले हैं, रेगिस्तान और बंजर भूमि है। अब मेरा भी कैसे निभ सकेगा भगवान।'' मित्र महोदय बड़ी हमदर्दी के साथ डॉ. जॉनसन को दिलासा देने लगे कि उन्हें परेशान होने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। दुनिया में करोड़ों लोग रहते आये हैं और उन्हें सदा अन्न मिलता ही रहता है।

''आप ठीक कहते हैं भाई। पर अगर मेरे भोजन का इन्तज़ाम हो सकता है, तो आपको धार्मिक किताबें पढ़ने का भी समय अवश्य मिल सकता है,'' डॉक्टर जॉनसन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

अंग्रेजी की मशहूर कहावत है कि ''समय धन है।'' पर असल बात तो यह है कि समय

धन से कहीं ज्यादा अहम् चीज़ है। हम रूपया पैसा तो कमाते ही हैं और जितनी ज्यादा मेहनत करें उतना ही – अगर किस्मत खराब न हो – ज्यादा धन कमा सकते हैं। लेकिन हज़ार परिश्रम करने पर भी क्या हम चौबीस घंटों को एक भी मिनट से बढ़ा सकते हैं? इतनी कीमती चीज़ का फिर धन से क्या मुकाबला? पर ईश्वर की यह भी कृपा है कि जहाँ वक़्त बढ़ाया नहीं जा सकता वहाँ लाख कोशिशें करने पर घटाया भी नहीं जा सकता। आजकल की विचित्र आर्थिक व्यवस्था में हमारे धन की कीमत रोज़ घट–बढ़ सकती है। अगर बैंक जवाब दे दें तो करोड़पति मिनटों में गरीब और भिखमंगा भी बन सकता है। किन्तु कुदरत का इन्तज़ाम नहीं बिगड़ता। समय के सागर में शेयर बाज़ार की तरह दिन में कितनी ही बार ज्वारभाटा नहीं आता। धन की दुनिया में अमीर–गरीब, बादशाह–कंगाल का फर्क है। पर खुशकिस्मती के समय के साम्राज्य में ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं है। वक्त के निज़ाम में सब बराबर हैं, उसमें आदर्श लोकतन्त्र है। फिर भी हम उसका महत्व नहीं समझते।

सन् 1932 की बात है। महामना मालवीय जी ने उन दिनों प्रयाग में ''एकता सम्मेलन'' बुलाया था। देश के बहुत से नेता दूर–दूर से सम्मेलन में शरीक होने के लिए पधारे थे। मैं तो उन दिनों यूनिवर्सिटी में विद्यार्थी था और नेताओं के दर्शन करने व उनके हस्ताक्षर लेने की लालसा से ही सम्मेलन के स्थान पर जाया करता था। वह सम्मेलन सफल नहीं हो सका, उसका कारण तो ब्रिटिश सरकार का राजनैतिक दाव पेच ही था। पर एक बात की ओर भी हमारा ध्यान गये बिना न रहा। सम्मेलन में शरीक होने के लिए अन्य नेता निश्चित समय पर ही आया करते थे, पर मालवीय जी की अनुपस्थिति के कारण वह थोड़ी देर राह देखकर तितर–बितर हो जाते थे। उन्हें खबर मिलती थी कि अभी मालवीय जी के आने में दो घंटे की देर है। समय की इस गैरपाबन्दी के कारण मैंने कई नेताओं को हताश व परेशान होते देखा। कई लोग तो निराश होकर बीच ही में सम्मेलन का कार्य भी छोड़ कर चले गए।

पर हमारी बदकिस्मती से इस तरह के अनुभव इस देश में इक्के दुक्के नहीं हैं। करीब–करीब सभी सम्मेलनों व सभाओं की बैठकों में इसी तरह का अनुभव मिलता है। मुझे राष्ट्रभाषा प्रचार के सिलसिले में देश के करीब सभी प्रान्तों में भ्रमण करने का मौका मिला है। समय–तत्परता के सम्बन्ध में सभी सूबों की कहानी करीब एक सी ही है। मीटिंगों का समय पर शुरु होना हमेशा अपवाद रहा करता है। नियम नहीं, और कहीं अपवाद हो जाता है तो यह नियम को सिद्ध करने के लिए। उड़ीसा में तो कई जगह मुकर्रर किए हुए वक्त से दो घंटे बाद मीटिंग शुरू करने का रिवाज़ ही पड़ गया है। वक्त ज़ाहिर करते हुए मीटिंग के बुलाने वाले व मीटिंग में आने वाले सभी सज्जन यही मान कर चलते हैं कि अगर चार बजे का समय दिया गया है तो मीटिंग छह बजे शुरू होगी। उसके बाद भले ही हो, पर छह के पहले नहीं।

इस तरह की गैर पाबन्दी की मुख्य जिम्मेदारी मैं संयोजकों पर ही मानता हूँ। वे जब कई बार मीटिंग के निश्चित समय के घंटे दो घंटे बाद ही सभा शुरू करते हैं, तो बेचारी जनता वहाँ ठीक समय पर आकर बैठी-बैठी क्या करे? अगर लोगों को मालूम हो जाये कि अमुक सभाएँ ठीक समय शुरू हो ही जाया करती हैं तो जिन्हें शामिल होना होगा वे वक्त पर ज़रूर जाएंगे। हाँ, कुछ लोग तो देरी करेंगे ही पर उनके लिए दूसरे सभी लोगों को दंड देने की कोई वजह नहीं है। और संयोजकों को समय भी ऐसा निश्चित करना चाहिए जो जनता के लिए सुविधाजनक हो।

पर आप यह न समझ बैठें कि यह हाल हमारे देश का ही है। इंग्लैंड व योरूप के दूसरे देशों में भी समय की बरबादी दिल खोलकर की जाती है। वहाँ की सभाएँ वक्त पर होती हैं और लोग समय के पाबन्द भी है। लेकिन अगर सिनेमा व थियेटर के टिकट लेने के लिए लम्बी-लम्बी कतारों का दृश्य आप देखें तो हैरान होंगे कि जो लोग इतने व्यस्त दिखते हैं और सड़कों पर भी दौड़-दौड़ कर चलते हैं वे इन कतारों मे ंदो-दो, तीन-तीन घंटे लगातार खड़े रहते हैं और केवल यही राह देखते रहते हैं कि कब टिकट-घर की खिड़की खुले और इन कतारों में जवान-बूढ़े, स्त्री पुरुष सभी रहते हैं। कभी-कभी तीन घंटे खड़े रहने के बाद भी थियेटर में जगह न रहने के कारण कुछ लोगों को वापिस जाना पड़ता है। टेनिस या फुटबाल मैच देखने के लिए टिकट-घरों के सामने इसी तरह की लम्बी कतारें घंटों खड़ी रहती हैं। फिर ये ही लोग बड़ी शान से लिखते होंगे - ''मुझे बड़ा अफसोस है कि समय न मिलने के कारण आपके पत्र का जवाब जल्दी न दे सका।''

और लतीफ़ तो यह है कि यह ही लोग शोर मचाते हैं कि उनके काम करने के घंटे घटाने चाहिए। वे चाहते हैं कि आफ़िसों में व मिलों में उनसे कम समय तक ही काम लिया जाए। वे अधिक अवकाश और फुर्सत चाहते हैं। आजकल की समाज व्यवस्था में, जबकि मज़दूरों के पसीने का फ़ायदा इने-गिने पूँजीपतियों की ज़ेब में जाता है। मज़दूरों के साथ हमारी पूरी हमदर्दी होना स्वाभाविक है। पर सवाल तो यह है कि अधिक अवकाश लेकर ये लोग आखिर करेंगे क्या? विद्वानों का कहना है कि फिर लोगों को कला व विज्ञान के लिए ज्यादा फुर्सत मिलेगी। पर क्या सभी लोग कलाकार व वैज्ञानिक बन जाएँगे? जो भी हो, ज्यादा मुमकिन तो यही है कि लोग टिकट-घरों के सामने अगर आज हफ्ते में कुछ ही दिन खड़े होते हैं तो फिर रोज़ ही, घंटों खड़े-खड़े मक्खी मारा करेंगे। देर तक पड़े सोया करेंगे तथा रात को देर तक नाच-घरों में बैठे-बैठे शराब चढ़ाया करेंगे।

आप नाराज़ न हों। मुमकिन है आप अपने समय का बहुत अच्छा प्रयोग करते हों और

किसी विशेष शास्त्र का अध्ययन करते हों। लेकिन मैं आपको आम लोगों का एक प्रतिनिधि ही मानकर चला था न।

अगर आप अपने समय का पूरा फायदा उठाते हैं और एक मिनट भी बरबाद नहीं करते तो आपको मुबारकबाद। अगर नहीं, तो क्या आप अपने जीवन पर गहरी और तीखी नज़र डालकर देखेंगे कि आप कितना वक्त नष्ट करते हैं और उसका क्या सदुपयोग किया जा सकता है? अगर सिर्फ सुबह ही जल्दी उठना शुरू कर दें तो आप काफी समय बचा लेंगे और दिन भर स्फूर्ति भी महसूस करेंगे।

पर मेहरबानी करके आप भी कहीं मशीन की तरह न बन जाएँ। घड़ी के ठोकों के साथ अपनी ज़िन्दगी की ताल न बैठा लें। अगर अपने प्रोग्राम में आपने जरा भी लचक न रखी और उसमें भिन्नता की गुँजाइश न रही, तो भी आप अपना और अपने घरवालों का जीवन सुखी न बना सकेंगे। फिर तो शायद आपका मिज़ाज भी चिड़चिड़ा हो जाएगा और आप दूसरों पर, जो अपना थोड़ा भी समय बरबाद करते हैं, नाराज़ भी होना शुरू कर देंगे।

बस खुशमिज़ाज रहकर और दूसरों को भी निभाकर आप अपने वक्त का जितना अच्छा उपयोग कर सकें, उतनी ही आपकी तारीफ़ है।

हाँ और कृपया आज से किसी से यह न कहें कि ''मुझे समय नहीं मिला।''

शब्दार्थ

यथासमय	-	निश्चित समय पर
व्यवस्थित	-	ठीक हालत में रखा हुआ
शरीक	-	शामिल
तितर-बितर होना	-	इधर-उधर बिखर जाना
इक्के दुक्के	-	कम संख्या में
मुकर्रर	-	निश्चित किया हुआ
अमुक	-	कोई खास, फलाना
संयोजक	-	सभा, समिति आदि की बैठक का आयोजन करने वाला
प्रतिनिधि	-	वह व्यक्ति जो किसी समूह के द्वारा किसी कार्य के लिए नियुक्त किया गया हो।
मुमकिन	-	जो हो सके

स्फूर्ति	-	ताज़गी
खुशमिज़ाज	-	हँसमुख
ज्वारभाटा	-	समुद्र के जल का वेगपूर्वक ऊपर उठना और पुनः नीचे गिरना, चढ़ाव-उतार

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. लेखक के अनुसार कौन से लोग बड़े हैं?
2. भारत और विदेश में समय की पाबंदी के संदर्भ में लेखक ने क्या विचार व्यक्त किए हैं?
3. विदेशों में लोग समय को किस प्रकार बरबाद करते हैं?
4. इस निबंध से आपको क्या शिक्षा मिलती है?
5. लेखक ने समय के सदुपयोग के लिए क्या सुझाव दिया है?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

6. 'समय नहीं मिला' निबंध का सार अपने शब्दों में लिखें।
7. 'समय धन से भी कहीं ज्यादा अहम् चीज़ है' - लेखक के इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

1. मेरा तो यह भी अनुभव है कि जो लोग सचमुच बड़े हैं और बहुत व्यस्त रहते हैं उनका पत्र व्यवहार भी बहुत व्यवस्थित रहता है।
2. धन की दुनिया में अमीर गरीब, बादशाह-कंगाल का फर्क है। पर खुशकिस्मती से समय के साम्राज्य में ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है। वक्त के निज़ाम में सब बराबर हैं, उसमें आदर्श लोकतंत्र है।

*****

19. डॉ. संसार चन्द्र

डॉ. संसार चन्द्र हिंदी निबन्ध साहित्य में व्यंग्य लेखन के लिए प्रख्यात हैं। आप एक प्रतिष्ठित समीक्षक व श्रेष्ठ निबन्धकार हैं। आपका जन्म सन् 1917 में हुआ। इन्हें एक मनमौजी कलाकार कहा जा सकता है। वस्तुतः संसार जी हास्य को अपना जीवन दर्शन मानते हैं। व्यंग्य बाणों से रक्तपात यह नहीं चाहते।

डॉ. संसार चन्द्र ने पंजाबी तथा अंग्रेज़ी में भी पुस्तकें लिखीं हैं। हिंदी में इनके तीन प्रसिद्ध संग्रह हैं, 'सटक सीताराम', 'अपनी डाली के काँटे', 'सोने के दाँत'। आलोचना प्रधान ग्रंथों में आपके दो ग्रंथ 'अनुभूति और विवेचन' तथा 'बिहारी' उल्लेखनीय हैं।

आपकी भाषा प्रवाहमयी तथा मुहावरेदार शब्दावली से युक्त है। उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। आपके निबन्धों में उर्दू के शेयरों या कविता की पंक्तियों का प्रयोग निबन्ध को रोचक व सरल बनाता है।

पाठ परिचय

'शार्टकट सब ओर' डॉ. संसार चन्द्र द्वारा रचित एक सशक्त व्यंग्य है। इसमें जहाँ लेखक ने एक ओर हास्य की हल्की गुदगुदी जगाई है। वहाँ दूसरी ओर आधुनिक युग के एक गम्भीर यथार्थ को भी सामने रखा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'शार्टकट दर्शन' का आधिपत्य एक खतरे की घंटी है। हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की होड़-बेतहाशा भाग दौड़ शार्टकट सभ्यता की जननी है। इसलिए आज स्थिति यह बन गई है कि लम्बी-लम्बी सड़कें वीरान हैं और लोग पगडंडियों का आश्रय ले रहे हैं। शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में शार्टकट का बढ़ रहा प्रभाव अत्यन्त चिन्ता का विषय है। लेखक ने शिक्षा के क्षेत्र में वाया बठिंडा का बखूबी जिक्र किया है। मूल पुस्तकों की अपेक्षा नोट्स और कुंजियों की प्रधानता शिक्षा के और मूल ध्येय को पंगु बना रही है। साहित्य के क्षेत्र में महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि की जगह मुक्तक, एकांकी नाटक व कहानी ने ले ली है इसके आगे लघुकथा, क्षणिका आदि का बोलबाला बढ़ रहा है।

इस प्रकार खाने पीने, पहनने, ओढ़ने, लिखने पढ़ने से लेकर रचना संसार तक शार्टकट का बोलबाला है। इस तथ्य को लेखक ने हल्के फुल्के अंदाज़ में प्रस्तुत किया है।

निबन्ध की भाषा साधारण है – भाषा में प्रवाह है – उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। मुहावरेदार भाषा के साथ उर्दू के शेयर व दोहों की पंक्तियों का आवश्यकतानुसार प्रयोग है। लेखक ने दृष्टांत और कथा के माध्यम से जहाँ विषय की व्याख्या की है, वहाँ अपनी बात को सरलता से समझाने का प्रयास भी किया है।

शार्टकट सब ओर

शार्टकट आधुनिक संस्कृति का दूसरा नाम है। आधुनिक सभ्यता का सम्पूर्ण भूगोल शार्टकट के अक्षांश पर ही घूमता है। आज भी सभ्यता और संस्कृति में अबाध गति दिखाई देती है, लोग बेतहाशा भाग रहे हैं। एक गम्भीर दौड़ छिड़ गई है। हर कोई एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में है। यह दौड़ कछुए और खरगोश की ही नहीं, बल्कि सिर्फ खरगोशों की दौड़ है। खरगोश कुलाँचें भरकर सरपट भाग रहे हैं। आगे-ही-आगे सबसे आगे निकलने के लिए लम्बी-चौड़ी सड़कों को छोड़कर पगडंडियों का सहारा लिया जा रहा है। आज खुली सड़कें सूनी दिखाई देती हैं और पगडंडियों पर भीड़ भड़क्का बढ़ता जा रहा है। ये पगडंडियाँ वास्तव में शार्टकट का ही रूपान्तर हैं।

आज मानव काम-काज के बोझ से इतना दब गया है कि शार्टकट के बिना उसकी गाड़ी आगे नहीं सरकती। उसका समूचा कार्य-व्यापार शार्टकट की कृपा से चलता है। उसका आना-जाना, उठना-बैठना, सोना-जागना, लिखना-पढ़ना, खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना सब शार्टकट पर निर्भर है। खुराक को लीजिए, लिबास को लीजिए, गर्जे कि हर चीज़ पर शार्टकट का अधिकार है। क्या आपको टाइट ड्रैस में कसे नर-नारियों को देखकर शार्टकट की याद ताज़ा नहीं होती। क्या किसी अल्टरा मॉडर्न देवी में शार्टकट का प्रयोग हेयरकट के रूप में देखकर आप उसका सिक्का नहीं मानते।

शार्टकट को जीवन-दर्शन के रूप में अपनाने का श्रीगणेश कब हुआ, इसका इतिहास बहुत पुराना है। एक प्राचीन कथा के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि शार्टकट की इस नवीन प्रणाली को जन्म देने का श्रेय सर्वप्रथम पार्वती जी को प्राप्त है। कहते हैं कि प्राचीन काल में एक समय शिवजी के दोनों पुत्रों में युवराज-पद के लिए घोर संघर्ष छिड़ गया। शिवजी को बड़े बेटे कार्तिकेय से अगाध प्यार था और पार्वती गणेश के पक्ष में थी। इस स्थिति के कारण शिवजी को बहुत चिन्ता हुई। शिवजी ने इस गुत्थी को सुलझाने के लिए एक युक्ति सोची और एक ऐलान कर दिया कि दोनों राजकुमारों में जो व्यक्ति सर्वप्रथम तीनों लोकों की परिक्रमा कर लेगा, वही युवराज-पद को ग्रहण करेगा। शिवजी मानते थे कि कार्तिकेय का वाहन हंस है और गणेश का चूहा, इसलिए बाज़ी कार्तिकेय के हाथ रहेगी। परन्तु पार्वती शिवजी की

चाल ताड़ चुकी थी। परिणामस्वरूप जब कार्तिकेय अपने द्रुतगामी वाहन पर सवार होकर विश्व-परिक्रमा के लिए निकला तो माँ पार्वती ने शार्टकट की शरण ली और गणेश को चूहे पर चढ़ाकर शिवजी की परिक्रमा करवा दी। त्रिलोकीनाथ की परिक्रमा के आगे भला त्रिलोक की परिक्रमा की क्या बिसात। हाथी के पाँव में सबका पाँव। फिर क्या था? इस चार गज के शार्टकट ने गणेश की विजय के नगारे पीट दिए।

जमाने का इन्कलाब देखिए। साहित्य के क्षेत्र में भी शार्टकट की नीति जोर पकड़ रही है। आज बड़े-बड़े ग्रन्थ कौन पढ़ता है, हाँ, पुस्तकालयों की अलमारियाँ ज़रूर इनसे सज जाती हैं। मार्केट में तो शार्टकट एवं लघु संस्करण ही चलते हैं। कुँजियों और नोटों की धूम मचती है। मॉडल पेपर और टेस्ट पेपर छपते हैं, जो एक सप्ताह, एक दिन, एक घंटा परीक्षा से पहले पढ़ लेने पर पास होने के पासपोर्ट समझे जाते हैं। इस दिशा में पांच मिनट परीक्षा पूर्व तक के शार्टकट निकल चुके हैं।

रचनात्मक क्षेत्र में भी शार्टकट का दौर पूरे यौवन पर है। शिल्प विधि में संक्षेप का आग्रह बढ़ रहा है। इसीलिए आज का नया कवि महाकाव्य को जीवन का जनाज़ा कहने पर उतर आया है। साहित्य के सभी रूपों पर कंट्रोल करने के लिए वह छटपटा रहा है। इसीलिए मुक्तक रचना ने प्रबन्ध की कमर तोड़ दी है। एकांकी नाटक के प्राण हर रहा है। छोटी कहानी बड़ी का गला दबोच रही है। सच्चाई यह है कि साहित्य की प्रत्येक विधा को शिकंजे में कसकर शार्ट किया जा रहा है।

मॉडर्न शादी भी बुरी तरह शार्टकट की लपेट में आ चुकी है। कहते हैं, पुराने जमाने में बात पक्की करते करते लड़के वालों के जूते घिस जाते थे। ठाका, सगाई और फेरों का मुहूर्त तय करते-करते लड़का बूढ़ा हो जाता था। फिर टैंट, कनात, शामियाने, नाई, पुरोहित, बावर्ची, बैरे, कार्ड, घोड़ी, मेहमान, बिरादरी का फिकर करते-करते लड़के वालों का कचूमर निकल जाता था। भला हो इस शार्टकट का। अब तो किसी को कानों-कान खबर नहीं होती और दुल्हन घर पहुँच जाती है। इस सम्बन्ध में एक अंधे भिखारी का किस्सा काबले गौर है-

पिछले दिनों हमारी गली के मोड़ पर एक अंधा भिखारी बैठा करता था, जो वास्तव में बनावटी अन्धा था। धूर्तराज इतना था कि शैतान के भी कान काटता था। जो काम बड़े-बड़े तीसमारखाँ नहीं कर सके वह उसने इस सफाई से कर दिखाया कि देखने वाले दंग रह गए। सामने एक खोखे वाले की जवान छोकरी रहती थी जो कभी जमीन से भी आँख ऊपर न उठाती थी। न जाने कब उस नकली अंधे की आँख से आँख लग गई कि एक दिन जब खोखे वाले की आँख लगी हुई थी, वे दोनों आँखों की लगा-लगी का खेल खेलकर नौ दो ग्यारह

हो गए। नकली फकीर जाती बार खोखे वाले के नाम एक खत लिखकर उसकी मरहम-पट्टी भी कर गया। खत का मज़बून साफ था कि दामाद बनने के ख्वाब देखते देखते शायद उसकी उमर बीत जाती। इसी भय से उसने अन्धा बनकर शार्टकट के जरिये अपनी मुराद पूरी कर ली है, जिसके लिए उसकी ख़ता माफ की जाए। यह अलग बात है कि बेचारा खोखे वाला उसके शार्टकट की मार से अब तक बिलबिलाता रहता है।

कौन नहीं जानता कि शार्टकट में कितनी बरकत है। आज किसमें सब्र है कि सब्र का प्याला लबरेज़ होने तक सब्र का दामन पकड़कर बैठा रहे। इसमें हर समय प्याले के छलकने का डर बना रहता है। सब्र के इम्तहान में ख़ुदा दुश्मन को भी न डाले -

'कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक'

मिर्जा ग़ालिब के इस फ़रमान को कौन भूल सकता है परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि किसी सब्र के शत्रु ने शार्टकट की फ़िलासफ़ी चलाई है। शार्टकट की फ़िलासफ़ी बेसब्र तो नहीं, पर हाँ, बागी ज़रूर है, जिसने -

धीरे-धीरे रे मना धीरे कारज होय।
माली सींचे सौ घड़ा रितु आए फल होय।।

की घिसी-पिटी एवं दकियानूसी फ़िलासफ़ी के खिलाफ जेहाद बुलन्द किया है। अब आप ही बताइए कि किस कम्बख्त में इतना दम है कि पहले तो सौ घड़ा पानी डाले और ऋतु आने की इन्तज़ार में दिन काटे, जबकि ज़िन्दगी काटने के लिए नहीं जीने के लिए है। वास्तव में जीवन की हर लम्बी मंजिल को अबूर करने के लिए ही शार्टकट ईज़ाद हुआ है। यह आधुनिकता का एक खास अन्दाज़ और मूड है - उसका तेवर और मुद्रा है। राजा से रंक तक सब इसी पर लट्टू हैं। गर्जे कि शार्टकट की माया ओर फैली हुई है।

शार्टकट की बदौलत क्या नहीं हुआ। लोग कहाँ से कहाँ पहुँच गए हैं। कोई जमाना था जब हमारे लिए हर मंजिल दुशवार थी। 'हनूज दिल्ली दूरस्त' की दुहाई सुनते ही कदम लड़खड़ा जाते थे। दिल्ली का सफर दूसरी दुनिया के सफर के बराबर था। आखिर भगवान ने गरीबों की फरियाद भी सुन ली और शार्टकट निकल आया - यह भठिंडा-मार्ग या वाया बठिंडा के नाम से मशहूर है। इस नये मार्ग से दिल्ली की यात्रा काफी शार्ट हो गई। इस नई खोज ने शिक्षा-क्षेत्र में तहलका मचा दिया। भारत के शिक्षा शास्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी शार्टकट का चमत्कार दिखाने के लिए बेताब हो उठे। परिणामस्वरूप शिक्षा-प्रणाली में भी एक बठिंडा लाइन का आविष्कार हुआ। इससे पूर्व बी० ए० पास करने के लिए विद्यार्थी को लगातार पूरे चौदह

वर्ष पढ़ना पड़ता था। इतनी लम्बी यात्रा करते-करते उसका अंग-अंग चूर हो जाता था। बठिंडा लाइन की कृपा से हज़ारों लाखों विद्यार्थी कॉलेजों की ख़ाक छानने और रुपया-पैसा बरबाद करने से बाल-बाल बच गए। झट किसी एक मॉडर्न अथवा ओरिएंटल भाषा में ऑनर्स पास किया, फिर केवल अंग्रेज़ी का एक पर्चा दिया और ग्रेजुएट बन गए। ग्रेजुएट भी पूरे सिक्केबन्द। यह अलग बात है कि नये मॉडल के इन ग्रेजुएटों को उनके बेतकल्लुफ़ यार-दोस्त कभी-कभी वाया बठिंडा कहकर उनकी तफ़रीह ज़रूर लेते हैं।

यह तो आपने देख लिया कि सब जगह शार्टकट का ही बोलबाला है मगर कोई जगह ऐसी भी होती हैं, जहाँ शार्टकट की नीति कारगर नहीं होती। बुजुर्गों की कहावत है कि अपनी अक्ल और पराया धन किसी को शार्ट नहीं लगते। अक्लमंद होना तो दूर रहा जिनकी अक्ल का खाना ही खारिज होता है, वे भी अपने-आपको ब्रह्मा का अवतार समझते हैं। इन अक्ल के अन्धों और गाँठ के पूरों पर जब मेरी नज़र दौड़ती है तो मुझे झट अपने एक पड़ोसी की याद आ जाती है। नाम उसका बद्रीनाथ है परन्तु लोग उन्हें आदर से दीवान बद्रीनाथ कहते हैं। बचपन से ही खोज में गहरी दिलचस्पी रखते हैं।यह अलग बात है कि अभी तक इनकी कोई खोज किसी आखिरी मंज़िल तक नहीं पहुंच सकी परन्तु इससे उनके उत्साह में कोई अन्तर नहीं पड़ा। दीवान साहिब की खोज के प्राय: दो ही मुख्य विषय हैं -एक शार्ट-कट और दूसरा साहित्य। वैसे उनका पूरा विश्वास है कि शार्टकट के बिना साहित्य का ज्ञान संभव नहीं। वैसे भी संसार का सर्वश्रेष्ठ साहित्य शार्टकट का ही साहित्य है। कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर, गालिब आदि ने संसार को शार्टकट देखने, समझने, सोचने और परखने का अवसर दिया है। इसीलिए ये कवि महान हैं। इनको विश्वकवि की उपाधि से विभूषित किया जाता है। दीवान साहिब का ग़ालिब से विशेष लगाव है। लगाव ही नहीं उस पर एकाधिकार समझते हैं। उस दिन जब मैंने ग़ालिब का एक शेर पढ़ा तो भरी सभा में मुझ पर पिल पड़े कि जौक का शेर है। मैंने बहुतेरा कहा कि दीवान साहिब, शेर गालिब का है मगर जनाब टस-से-मस नहीं हुए। आखिर तंग आकर मुझे कहना पड़ा कि साहिब अगर यकीन नहीं तो ''दीवाने गालिब'' से सन्देह दूर कर लीजिए। मेरा ''दीवाने गालिब'' कहना ही था कि हज़रत की बाँछें खिल उठीं और ललककर पूछने कि क्या सचमुच ग़ालिब भी दीवान था। अब आप जान ही गए होंगे कि शार्टकट के माहिर होने के साथ-साथ उनकी अक्ल का दीवान भी कितना शार्ट है।

सागर में गागर भरने की कहावत आपने ज़रूर सुनी होगी, संभव है बहुत से लोग इसका अर्थ न जानते हों परन्तु जो लोग शार्टकट की फ़िलासफ़ी को समझते हैं, वे ज़रूर इस मुहावरे की तह तक पहुँच जाते हैं। कौन नहीं जानता कि एक श्रेष्ठ कवि इस मुहावरे का अर्थ निश्चित

रूप से अपनी कविता में उतारता है। वह अगस्त्य मुनि की तरह एक विशाल सागर को अपने काव्य की गागर में भरता है। वह विस्तारवादी नहीं है। नन्द एक नपे-तुले शब्दों के ज़ोर पर ही सब हक़ीक़त बयान कर देता है। संकेतमात्र से ही सब रहस्य खोल देता है। वास्तव में काव्य-कला का यह रूप शार्टकट की कला का संवरा हुआ रूप है। हिन्दी के कविवर बिहारीलाल इस कला के विशेष पारखी माने जाते हैं। इनके पात्र ''भरे मौन में करत हैं नैनन हीं सौं बात'' के लिए प्रसिद्ध हैं। वह कथनी और करनी में विश्वास नहीं रखते बल्कि इनका विश्वास मौन व्रत में है। इनका मौन व्रत शार्ट-कट सम्प्रदाय का ही एक बृहद् अनुष्ठान है। ये महानुभाव अपना समग्र कार्य-व्यापार आँखों के इशारों में चलाते हैं। इनके पास बात करने को फ़ुर्सत कहाँ। किसी उर्दू शायर ने सम्भवत: इनकी इस अदा पर कुर्बान होकर ही यह शेर पढ़ा है :-

जमाने को फुर्सत नहीं गुफ्तगू की
अरुसे सुखन ये इशारों के दिन हैं।

शब्दार्थ

अक्षांश - उत्तर से दक्षिण
फ़िलासफ़ी - दर्शनशास्त्र
रूपान्तर - बदला हुआ रूप
श्री गणेश - प्रारम्भ
द्रुतगामी - तेज़ चलने वाले
वाहन - सवारी
धूर्तराज - पाखंडी एवं चालाक
नौ दो ग्यारह होना - भाग जाना
ख़ता - ग़लती
मुराद - इच्छा
गुफ़्तगू - बातचीत
लबरेज़ - ऊपर तक भरा हुआ
जेहाद - धर्मयुद्ध
बृहद् - विशाल
बिलबिलाना - रोना-चिल्लाना
तीसमारखाँ - बहुत बड़ा बहादुर
उपाधि - पदवी
दुशवार - मुश्किल
अनुष्ठान - कोई धार्मिक कृत्य, नियमपूर्वक आरम्भ करना

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. शार्टकट को जीवन दर्शन के रूप में अपनाने का श्रीगणेश कब हुआ?
2. शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रहे शार्टकट का वर्णन अपने शब्दों में करें।
3. 'शार्टकट सब ओर' में लेखक के व्यंग्य के द्वारा शार्टकट के कुप्रभावों की ओर कैसे संकेत किया है?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

4. 'शार्टकट सब ओर' निबन्ध आज के युग का यथार्थ चित्रण है। इसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शार्टकट अपनाकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति का वर्णन कैसे किया गया है?
5. 'शार्टकट सब ओर' निबन्ध का सार अपने शब्दों में लिखो।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. एक गम्भीर दौड़ छिड़ गई है। हर कोई एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में है। यह दौड़ कछुए और खरगोश की नहीं, बल्कि सिर्फ खरगोशों की दौड़ है।
7. मुक्तक रचना ने प्रबन्ध की कमर तोड़ दी है। एकांकी नाटक के प्राण हर रहा है। छोटी कहानी बड़ी का गला दबोच रही है। सच्चाई यह है कि साहित्य की प्रत्येक विधा को शिकंजे में कसकर शार्ट किया जा रहा है।
8. ये महानुभाव अपना समग्र कार्य व्यापार आँखों के इशारों से चलाते हैं। इनके पास बात करने की फुर्सत कहाँ। किसी उर्दू शायर ने सम्भवतः इनकी इस अदा पर कुर्बान होकर ही यह शेर पढ़ा है –

   जमाने को फुरसत नहीं गुफ्तगू की
   अरु से सुखन ये इशारों के दिन हैं।

*****

20. डॉ. धर्मपाल मैनी

डॉ. धर्मपाल मैनी शुक्लोत्तर युग के प्रसिद्ध निबन्धकार हैं। आपका जन्म सन् 1929 में हुआ। महेन्द्रा कॉलेज पटियाला से हिंदी में एम० ए० करने के पश्चात इन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्ष राजकीय महाविद्यालय लुधियाना में और फिर पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक रहे। कुछ देर तक गुरु नानक देव विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में रीडर भी रहे।

डॉ. धर्मपाल मैनी ने भारतीय संस्कृति की महानता और आधारभूत तत्वों का सविस्तार परिचय दिया। मुख्यतः यही इनके लेखन का विषय रहा। आपने हिंदी, पंजाबी और अंग्रेज़ी में लिखा। हिन्दी में आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं - सन्तों के धार्मिक विश्वास (शोध प्रबन्ध), श्री गुरु ग्रन्थ साहिब एक परिचय, कबीर के धार्मिक विश्वास, पंजाब का धार्मिक साहित्य (सह-लेखक), संस्कृति की परिभाषा पर कुछ टिप्पणियाँ (अनुवाद), गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति आदि। इसके अतिरिक्त इनके 30-40 शोध-निबन्ध भी प्रकाशित हो चुके हैं । उनकी कुछ कृतियाँ पंजाब सरकार तथा अन्य प्रान्तीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत भी हुई हैं।

हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दी फंडामैंटल्ज़ आफ इंडियन कल्चर' तथा पंजाबी में 'आदि ग्रन्थ दे सन्त कवि कबीर जी', 'गुरु गोबिन्द सिंह दे काव्य विच भारती संस्कृति' तथा 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब- इक परिचय' प्रमुख रचनाएँ हैं।

पाठ परिचय

प्रस्तुत निबन्ध '**गुरु गोबिन्द सिंह**' डॉ. धर्मपाल मैनी द्वारा रचित जीवनी साहित्य के अन्तर्गत है। इसमें लेखक ने अपने नायक श्री गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन के समस्त पहलुओं अर्थात् उनके सन्त, सिपाही व कवि रूप को सामने रखकर उनके जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म की विभिन्न परिस्थितियों का आँकलन करते हुए गुरु तेग बहादुर

का बलिदान, खालसा पन्थ की स्थापना, गुरु जी द्वारा लड़े गए विभिन्न युद्ध तथा साहिबज़ादों के बलिदान का व्यापक वर्णन किया गया है। लेखक ने गुरु जी के मानवीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए उनके जीवन के अन्तिम महान कार्य अर्थात् आदिग्रन्थ में अपने पिता नवम गुरु तेग़बहादुर की वाणी मिलाकर उसे पन्थ का गुरु 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' बनाने का भी वर्णन किया है।

लेखक की भाषा भावानुकूल है। घटनाओं के चित्रण में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान है। इस प्रकार लेखक ने गुरु जी के व्यापक व सहज आत्मीय दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

गुरु गोबिन्द सिंह

"हम इह काज जगत मो आए।
धरम हेतु गुरु देव पठाए।।"

जब संसार में अत्याचार बढ़ता है तब उसे दूर करने और धर्म का राज्य पुनः स्थापित करने के लिए कोई न कोई महापुरुष जन्म लेता है। सत्रहवीं शताब्दी में भी औरंगज़ेब के अत्याचारों से जब सारी भारतीय जनता दुःखी थी, तब उसका उद्धार करने के लिए तथा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए गुरु गोबिन्द सिंह जी ने जन्म लिया। सन् 1666 में नवम गुरु तेग़ बहादुर के घर पटना में गुरु गोबिन्द सिंह का जन्म हुआ। गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने जीवन के पहले पाँच वर्ष पटना में ही बिताए।

आरम्भ से ही उन्हें बहादुरी के खेल खेलने का शौक था। इस प्रकार वे निर्भीक, साहसी तथा आत्मविश्वासी बनते जा रहे थे। एक बार पटना के नवाब की सवारी आती देखकर चोबदार ने खेलते हुए गोबिन्द राय तथा उनके साथ के बच्चों को आदेश दिया कि खड़े होकर नवाब साहब को सलाम करो। लेकिन उनका स्वाभिमान जाग उठा और न केवल उन्होंने स्वयं सलाम करने इन्कार कर दिया, अपितु अपने मित्रों को भी ऐसा करने से मना कर दिया। इस छोटी सी घटना से उनमें उभरते हुए स्वाभिमान, साहस एवं निर्भीकता का परिचय मिलता है।

जब गोबिन्द राय पाँच वर्ष के हो गए, तो सिक्खों का एक दल उन्हें लेकर, पंजाब के लिए चल पड़ा। मार्ग में उन्होंने कई तीर्थों स्थानों की यात्रा की। बनारस, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, मथुरा तथा वृन्दावन आदि स्थानों पर होते हुए वे अन्ततः आनन्दपुर साहब पहुँच गए । इसके कुछ समय बाद गुरु तेग बहादुर जी को पता चला कि औरंगज़ेब की आज्ञा का पालन करते हुए कश्मीर का सूबेदार शेर अफ़गान वहाँ के हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहा है और उन्हें मुसलमान बनने पर विवश कर रहा है। नवाब से कुछ समय माँग कर कुछ ब्राह्मण अपने धर्म की रक्षा के लिए गुरु जी के पास आए। काफी सोच-विचार के बाद गुरु जी इस परिणाम पर पहुँचे कि इस समय धर्म की रक्षा के लिए किसी महान व्यक्ति के बलिदान की आवश्यकता है। गुरु जी को चिन्तित देखकर बालक गोबिन्द राय ने कारण पूछा। कारण सुनकर बालक

गोबिन्द एकदम बोल उठा, ''पिता जी, आपसे बढ़कर महान व्यक्ति कौन हो सकता है?'' बालक के इन वचनों ने न केवल गुरु जी की चिन्ता दूर कर दी, अपितु उन्हें यह भी विश्वास हो गया कि उनका उत्तराधिकारी बालक निश्चय ही साहस, बलिदान और त्याग की भावनाओं से पूर्ण होकर अत्याचार का विरोध करेगा। गुरु जी ने ब्राह्मणों द्वारा नवाब को कहलवा भेजा कि यदि गुरु तेग़बहादुर मुसलमान हो जावेंगे, तो हम भी अपना धर्म बदल लेंगे। नवाब ने यह सूचना औरंगज़ेब को भेज दी। औरंगज़ेब ने गुरु जी को दिल्ली बुलाया, उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए कहा। गुरु जी ने इन्कार कर दिया तथा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए गुरु तेग़ बहादुर ने अपना बलिदान दे दिया।

पिता के बलिदान के साथ ही नौ वर्ष के बालक को 'गुरु' बनना पड़ा। इस छोटी सी आयु में ही गुरु जी ने अपनी शक्ति को बढ़ाना आरम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप छोटे-छोटे पहाड़ी राजाओं तथा मुगल सरदारों में गुरु के प्रति वैर और द्वेष की भावना बढ़ती गई। वे ऐसे अवसर की तलाश में रहने लगे, जब गुरु गोबिन्द को नीचा दिखा कर उनकी शक्ति को कम किया जा सके। कहलूर का राजा भीमचन्द गुरु गोबिन्द सिंह से विशेष रूप से वैर रखता था। गढ़वाल के राजा फतेहशाह की लड़की के साथ उसके पुत्र का विवाह निश्चित हुआ। उसने फतेहशाह को गुरु गोबिन्द सिंह से युद्ध करने पर विवश कर दिया। परिणामस्वरूप पाँवटा से छह मील दूर 'भंगाणी' के स्थान पर यह युद्ध हुआ। गुरु जी ने खूब अच्छी तरह शत्रु-सेना का मुकाबला किया। उनके वीर इतनी बहादुरी से लड़े कि शत्रु की सेना मैदान छोड़कर भाग गई और युद्ध जीतकर गुरु जी आनन्दपुर वापिस आ गये।

जम्मू के सूबेदार मियाँ खान के सेनापति आलिफ खाँ तथा पहाड़ी राजाओं के बीच 'नादौन' में युद्ध हुआ। पहाड़ी राजाओं को गुरु जी की शक्ति का पता लग चुका था। इसलिए उन्होंने गुरु गोबिन्द सिंह से सहायता की प्रार्थना की। गुरु गोबिन्द सिंह औरंगज़ेब के सेनापतियों से टक्कर लेने के लिए तैयार बैठे ही थे इसलिए उन्होंने पहाड़ी राजाओं का साथ दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ और मुगल सेना भाग खड़ी हुई।

आनन्दपुर साहिब में दस वर्ष रहने के बाद उन्होंने तीन वर्ष पाँवटा साहिब में बिताए और तत्पश्चात जीवन के अगले अठारह वर्ष फिर आनन्दपुर साहब में ही बिताए। इसी समय उन्होंने रामायण और महाभारत के वीरों तथा चंडी के वीरतापूर्ण कार्यों को सुनकर अपने योद्धाओं में अदम्य साहस भरा। संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने पाँच भक्तों को काशी भी भेजा।

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन की सबसे महान घटना है - 'खालसा पंथ सजाना' उन्हें हिन्दू

जाति में, धर्म और देश की रक्षा करने के लिए समाज में नवरक्त का संचार करने की आवश्यकता अनुभव हुई। प्रतिभाशाली गुरु को एक अद्‌भुत साधन सूझा। सन् 1699 की वैशाखी के दिन आनन्दपुर साहब में गुरु जी ने अपने सब शिष्यों की एक सभा बुलाई। उसमें घोषणा की कि धर्म की रक्षा के लिए कुछ व्यक्तियों के बलिदान की आवश्यकता है। क्या इस सभा में ऐसा कोई आदमी है, जो अपने प्राणों की आहुति दे सके? गुरु जी के हाथों में नंगी तलवार देखकर और आवेश में भरी हुई उनकी आँखें देखकर किसी को आगे जाने का साहस न हुआ। सारी सभा में सन्नाटा छा गया। गुरु जी ने दूसरी बार फिर ललकारा। उनकी इस ललकार को सुनकर लाहौर का खत्री दयाराम सामने आ गया। गुरु जी उसे अपने साथ पास के तम्बू में ले गए। कहा जाता है कि वहाँ उन्होंने दयाराम को बिठा दिया, और एक बकरे का खून कर दिया। खून से भरी तलवार लेकर वे फिर बाहर आए और बलिदान के लिए और भेंट माँगी। तब दिल्ली का जाट धर्मदास सामने आया। उसे भी वे तम्बू में ले गए और खून से सनी हुई तलवार लेकर फिर बाहर आकर तीसरा बलिदान माँगा। इस बार द्वारिका का धोबी मोहकम चन्द, फिर बीदर (दक्षिण) का नाई साहिबचंद और उसके बाद जगन्नाथपुरी का रहने वाला झीवर हिम्मतराय बलिदान देने के लिए आगे आए। उन्हें भी बारी-बारी गुरु जी तम्बू में ले गए। थोड़ी देर बाद गुरु जी इन पाँचो को अपने साथ लेकर तम्बू से बाहर निकले और सारी सभा के सामने उन्हें उपस्थित करके उन्हें 'पंज प्यारे' की संज्ञा दी। सारी सभा आश्चर्य में पड़ गई। पहले गुरु जी ने उन पाँचों को दीक्षित किया और फिर आप उनसे दीक्षित हुए। इस प्रकार उन्होंने 'खालसा-पंथ' की नींव रखी और उसके बाद थोड़े ही दिनों में बहुत से लोगों को उन्होंने इस पंथ में दीक्षित किया। इसी समय में स्वयं गुरु गोबिन्द राय से गुरु गोबिन्द सिंह बन गए। इस प्रकार गुरु नानक की परम्परा में जो धर्म अब तक आध्यात्मिक-प्रधान था, उसे गुरु जी ने वीरता का पाठ भी पढ़ा दिया।

जाति, व्यवसाय तथा प्रदेश के बन्धनों को तोड़कर जिन पाँच प्यारों के ऐक्य से उनके नए पंथ का निर्माण हुआ, वह अद्‌भुत सामाजिक समता के धरातल पर खड़ा हुआ। वे स्वयं इन पाँच प्यारों के आगे झुके और सम्पूर्ण समाज में उन्हें गौरवान्वित किया। खालसा का निर्माण करके गुरु गोबिन्द सिंह ने भक्ति और शक्ति को मिला दिया।

गुरु गोबन्द सिंह ने अब अपनी शक्ति को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उनकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर औरंगज़ेब की अत्याचार-पूर्ण भावना एवं ईर्ष्या प्रबल हो उठी। उसने सभी प्रकार से गुरु गोबिन्द सिंह की शक्ति को समाप्त करने का निश्चय कर लिया। इधर पहाड़ी राजा भी गुरु जी के प्रति ईर्ष्यालु थे। इसलिए औरंगज़ेब ने लाहौर तथा सरहिन्द के सूबेदारों

को गुरु जी पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। पहाड़ी राजा भी उनके साथ हो गए। इन सबने मिलकर आनन्दपुर साहब को घेर लिया। घेरा कई महीने तक चलता रहा। अन्त में पानी और रसद का पहुँचना भी बिल्कुल बन्द हो गया। फिर भी गुरु जी ने धैर्य न छोड़ा। किन्तु कुछ सिक्ख घबरा गये और उन्होंने गुरु जी को आनन्दपुर साहब छोड़ने की राय दी। लेकिन गुरु जी ने इन्कार कर दिया। इस पर चालीस सिक्खों ने उन्हें 'बेदावा' लिखकर दे दिया (अर्थात् वे उन्हें गुरु नहीं मानते) और रात को किला छोड़कर चले गए। इधर मुगल सेनापति गुरु जी को विश्वास दिलाते रहे कि यदि वे दुर्ग छोड़कर चले जाएंगे तो उनको कुछ नहीं कहा जाएगा। यद्यपि गुरु जी उनकी चालबाज़ी को समझते थे, तब भी आठ महीने के आनन्दपुर के घेरे से तंग आकर उन्होंने दुर्ग छोड़ने का निश्चय कर लिया। दिसम्बर सन् 1704 की एक रात को वे अपने परिवार तथा बचे खुचे साथियों को साथ लेकर आनन्दपुर से निकल पड़े। कुछ दूरी पर सरसा नदी थी। वह उसे पार करने की योजना बना रहे थे कि मुगल सेनापतियों ने अपना वचन तोड़कर गुरु जी के दल पर धावा बोल दिया। मुट्ठी भर सिक्खों ने मुगलों का बड़ी वीरता से मुकाबला किया। इस बीच गुरु जी सरसा नदी पार कर गए। किन्तु इस गड़बड़ी में उनके दो छोटे पुत्र और उनकी माता गुजरी जी उनसे बिछुड़ गए। गुरु जी नदी पार कर चमकौर की गढ़ी में पहुँच गए। वहाँ उन्होंने उस छोटी सी गढ़ी में ही मोर्चा बाँध लिया। मुगल सेना भी आ पहुँची और उसने गढ़ी को घेर लिया। मुट्ठी भर सिक्ख सैनिकों ने मुगल सेना का डट कर मुकाबला किया और भारी मार-काट मचाई। गुरु जी के दोनों बड़े बेटे अजीत सिंह और जुझार सिंह मैदान में कूद पड़े और दोनों बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। रात में गुरु जी गढ़ी छोड़कर निकल गए।

उधर उनके दोनों छोटे पुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह, अपनी दादी गुजरी सहित उनके रसोइए गंगू के गाँव चले गए। धन के लोभी विश्वासघाती गंगू ने इन दोनों बच्चों को सरहिन्द के नवाब वज़ीर खाँ को सौंप दिया बाद में इस्लाम स्वीकार न करने पर नवाब ने उनको जीवित ही दीवारों में चिनवा दिया। धर्म के लिए दो छोटे-छोटे बालकों के बलिदान का ऐसा उदाहरण संसार के इतिहास में और कहीं नही मिलता।

चमकौर से निकलकर गुरु जी कई स्थानों पर ठहरते हुए मालवा प्रान्त की ओर बढ़े, जहाँ उनके बहुत से अनुयायी थे। कुछ दिनों के बाद वे दीना नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ से उन्होंने औरंगज़ेब को फ़ारसी कविता में एक पत्र लिखा, जिसे 'ज़फ़रनामा' कहते हैं। यह गुरु जी की एक उत्कृष्ट और बहुत विख्यात कविता है। औरंगज़ेब उन दिनों दक्षिणी भारत में था। वहीं वह पत्र भेजा गया। इस पत्र में गुरु जी ने औरंगज़ेब को उसकी धर्मान्धता, संकीर्णता और अत्याचारों पर बड़ी फटकार बताई। दीना में कुछ दिन ठहरकर वे आगे बढ़े। सरहिन्द के नवाब

की सेना उनका पीछा करती हुई आ रही थी। वह उनके समीप पहुँच गई। गुरु जी अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ उस समय खिद्राना नामक इलाके के जंगल में थे। उन्होंने नवाब की सेना का मुकाबला करने के लिए एक ऊँचे टीले पर मोर्चा लगा दिया।

वे चालीस सिक्ख जो आनन्दपुर में गुरु जी का परित्याग करके अपने घरों को लौट आए थे, अपने कुकृत्य पर पछताने लगे और जब उन्हें पता चला कि गुरु जी इधर के प्रान्त में ही आए हुए हैं तो उनकी सहायता के लिए निकल पड़े और खिद्राना जा पहुँचे जहाँ नवाब की सेना पहुँच चुकी थी। नवाब की सेना से उनकी मुठभेड़ हुई। उन्होंने नवाब की सेना से घोर युद्ध किया। एक एक वीर ने कई-कई शत्रु सैनिकों को मार कर वीरगति प्राप्त की। गुरु गोबिन्द सिंह ने भी टीले से उत्तर कर धावा बोल दिया। नवाब की सेना के पाँव उखड़ गए और वह भाग निकली। गुरु जी चकित थे कि उनकी सहायता करने वाले ये लोग कौन थे और कहाँ से आए थे। युद्ध के मैदान में आकर उन्होंने उन योद्धाओं को पहचाना। किन्तु उस समय तक सिवाय एक के सब प्राण छोड़ चुके थे। महासिंह ने जिसमें अभी साँस बाकी थी, गुरु जी से प्रार्थना की कि हमारा वह 'बेदावा' फाड़ दीजिए। बेदावे वाला कागज़ गुरु जी की जेब में ही था। उन्होंने उसी समय वह कागज़ निकालकर महासिंह के सामने फाड़ दिया। यह देखकर महासिंह की आत्मा को बड़ी शान्ति मिली और उसने आराम से मृत्यु का आलिंगन किया। गुरु जी ने 40 शूरवीरों को 'चालीस मुक्ते' की उपाधि दी और उस स्थान का नाम, जहाँ ये वीर शहीद हुए थे, 'मुक्तसर' रखा।

गुरु जी का दृष्टिकोण कितना मानवीय था, इसका पता इस बात से चलता है कि उन्होंने भाई कन्हैया को कहा हुआ था कि युद्ध में प्रत्येक को जल पिलाओ चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, मित्र हो या शत्रु। इतनी ही नहीं, मरहम पट्टी करने वालों को भी उनका यही आदेश था कि मित्र और शत्रु के भेद को भुलाकर घायलों का उपचार किया जाए।

पुत्रों की मृत्यु के बाद जब माता जी ने गुरु जी से उनके विषय में पूछा, तो जो उत्तर उन्होंने दिया वह उनके त्याग-पूर्ण, उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण को प्रकट करता है :

'इन पुत्रन के सीस पर वार दिए सुत चार।
चार मुए तो क्या हुआ जीवित कई हज़ार।।'

यह कह कर जिस 'खालसा पंथ' को उन्होंने सजाया, उसके सभी सभासदों को उन्होंने पुत्र बना लिया। धन्य है उनका यह व्यापक एवं सहज आत्मीय दृष्टिकोण-अपने पुत्रों का बलिदान तथा शिष्यों को पुत्रों से भी बढ़कर समझना। विश्व के इतिहास में शायद ही ऐसा कोई उदाहरण मिले।

गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन का अन्तिम महान कार्य है – 'आदिग्रन्थ' में अपने पिता नवम गुरु तेग बहादुर जी की वाणी मिलाकर उसे पंथ का गुरु 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' बना देना। गुरु घर से सम्बन्धित कई लोगों ने आरम्भ से ही अपने को गुरु गद्दी का अधिकारी बताया था। यह विकृत भावना पंथ में पारस्परिक कलह का कारण न बन जाए, इससे बचने के लिए तथा जीवित उपयुक्त गुरु का अभाव देखकर उसे पूरा करने के लिए गुरु गोबिन्द सिंह ने ग्रन्थ को ही विधिवत 'गुरुत्व' सौंप दिया। मानव की अन्तिम दुर्बलता यश प्राप्ति की है। गुरु जी उससे भी बचे रहे। वे चाहते तो उसमें अपनी वाणी भी मिला सकते थे। लेकिन उन्होंने अपनी वाणी को गुरु ग्रन्थ साहब में सम्मिलित नहीं किया। उनकी वाणी अलग ग्रन्थ में संग्रहीत की गई, जिसे 'दशम ग्रन्थ' कहते हैं।

अपने पिता के हत्यारे और पुत्रों के विनाशक औरंगज़ेब का हिसाब चुकाया – उन्होंने उसके पुत्र मुअज्ज़म को सफलता का आशीर्वाद और नैतिक सहायता देकर। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद जब उसके पुत्रों में लड़ाई हुई, तो भाई नन्दलाल जी शाहज़ादा मुअज्ज़म के पास थे। उन्हीं के कहने पर तथा मुअज्ज़म में अपेक्षाकृत अधिक मनुष्यत्व देखकर गुरु जी ने उन्हें अपनाया था। वह विजयी होकर 'बहादुरशाह' के नाम से बादशाह बना। दोनों सद्भावपूर्ण ढंग से आगरा में मिले और बहादुरशाह के निमन्त्रण पर गुरु जी वहाँ कुछ दिन ठहरे। बादशाह ने उन्हें जागीर देने की इच्छा प्रकट की, किन्तु गुरु जी ने जागीर लेने से नम्रतापूर्वक इन्कार कर दिया। इस्लाम के माध्यम से मानवीय धर्म का प्रचार करने तथा सभी प्रकार से प्रजा को प्रसन्न रखने का सन्देश देकर वे दक्षिण की ओर चल पड़े।

दक्षिण में गोदावरी नदी के किनारे माधव दास नामक एक वैरागी एवं योगी रहते थे। गुरु जी उनसे मिले। वह गुरु जी से बहुत प्रभावित हुए और उनके शिष्य बन गए। अत्याचार का विनाश करने के लिए गुरु जी ने उन्हें पंजाब भेजा। उन्होंने बन्दा वैरागी के रूप में वीरतापूर्ण ढंग से अपने कर्त्तव्य को निभाने का प्रयत्न किया।

इधर सरहिन्द का नवाब वजीर खाँ बहादुरशाह के साथ गुरु जी का प्रेम बढ़ता हुआ देखकर उनका जानी दुश्मन बना गया था। उसने दो पठानों को गुरु जी की हत्या करने के लिए उनके पीछे लगा दिया था। जब गुरु जी दक्षिण में नन्देड़ पहुँचे तो वे भी श्रद्धालु भक्तों का रूप धारण कर प्रतिदिन उनके उपदेश सुना करते थे। एक दिन अवसर पाकर एक पठान ने उनके पेट में छुरा घोंप दिया। शीघ्र ही गुरु जी के शिष्यों ने तलवार से उनकी हत्या कर दी। उनका घाव सीया गया। लेकिन, खून अधिक बह जाने के कारण वे दुर्बल हो गए। धीरे-धीरे कुछ

आराम आने लगा। वे अभी पूरी तरह ठीक न हुए थे कि एक दिन धनुष पर चिल्ला चढ़ाने लगे। धनुष नया और सख़्त था चिल्ला चढ़ाने के लिए जब उन्होंने ज़ोर लगाया तो घाव के टाँके टूट गए और रक्त बहने लगा। घाव को पुनः सीने का प्रयास किया गया, किन्तु वह ठीक से सीया न जा सका। ऐसी अवस्था में उन्हें अपना अन्त समय निकट दिखने लगा। तब उन्होंने उपस्थित शिष्यों को पास बुलाया, उन्हें उच्च आचरण एवं मर्यादा में रहते हुए धर्मपालन का सन्देश दिया और विधिवत 'श्री गुरु ग्रन्थ साहब' को गुरुपद पर आसीन कर सन् 1708 में लगभग 42 वर्ष की आयु में वह परम ज्योति में विलीन हो गए।

शब्दार्थ

द्वेष	-	कलह	अदम्य	-	अद्‌भुत
दीक्षित करना	-	दीक्षा देना	वीरगति को प्राप्त होना	-	शहीद होना
उत्कृष्ट	-	श्रेष्ठ	विख्यात	-	प्रसिद्ध
संकीर्णता	-	तंगदिली	परित्याग	-	छोड़ना
विधिवत्	-	तरीके से	कुकृत्य	-	बुरे कार्य
आत्मीय	-	आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला			
विकृत	-	बिगड़ा हुआ	उपयुक्त	-	ठीक
चिल्ला चढ़ाना	-	धनुष की डोरी बाँधना, प्रत्यंचा चढ़ाना			

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'ज़फ़रनामा' के विषय में आप क्या जानते हैं?
2. गुरु जी के मानवीय दृष्टिकोण का परिचय कैसे मिलता है। अपने शब्दों में लिखें ।
3. बन्दा वैरागी कौन था? गुरु जी से उसकी भेंट का अपने शब्दों में वर्णन करें।

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

4. गुरु गोबिन्द सिंह के जन्म के समय की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उनके बाल्यकाल का वर्णन करो।

5. 'खालसा पन्थ की साजना' गुरु जी के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है, अपने शब्दों में लिखो।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. गुरु जी को चिन्तित देखकर बालक गोबिन्द राय ने कारण पूछा। कारण सुनकर बालक गोबिन्द एकदम बोल उठा, ''पिता जी, आपसे बढ़कर महान व्यक्ति कौन हो सकता है?''

7. इसी समय वे स्वयं गुरु गोबिन्द राय से गुरु गोबिन्द सिंह बन गए। इस प्रकार गुरु नानक की परम्परा में जो धर्म अब तक आध्यात्मिक प्रधान था, उसे गुरु ने वीरता का पाठ भी पढ़ा दिया।

8. गुरु जी ने इन 40 शूरवीरों को चालीस मुक्ते की उपाधि दी और उस स्थान का नाम, जहाँ ये वीर शहीद हुए थे, मुक्तसर रखा।

9. 'इन पुत्रन सीस पर वार दिए सुत चार।
   चार मुए तो क्या हुआ जीवित कई हज़ार।'

*****

कहानी भाग

21. जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद का जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में सन् 1889 में हुआ । स्कूल में आपने केवल आठवीं श्रेणी तक शिक्षा पाई। तत्पश्चात् घर पर ही संस्कृत, हिंदी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं तथा उनके साहित्य का ज्ञान अपनी लग्न से प्राप्त किया। आप उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, आलोचक, निबन्ध लेखक तथा कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के दार्शनिक विद्वान थे। सन् 1937 में अल्पायु में ही आपकी मृत्यु हो गई।

प्रसाद जी की प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण इनके काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी और निबन्ध आदि में मिलता है। इनकी सबसे पहली कविता 'भारतेन्दु' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन इन्होंने स्वयं शुरू किया। प्रसाद जी के प्रमुख नाटक अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी हैं। कंकाल, तितली और इरावती (अधूरा) आदि उपन्यास हैं। आँधी, इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि, छाया और आकाशदीप इनके कहानी संग्रह हैं। प्रसाद जी की अमर कृति 'कामयानी' महाकाव्य है जो उनकी कीर्ति का आलोक स्तम्भ है। अन्य काव्य संग्रह हैं - आँसू, झरना और लहर।

कोमल भाव, परिमार्जित भाषा और कलापूर्ण शैली की दृष्टि से आपकी कहनियाँ साहित्य में एक विशेष स्थान रखती हैं। कवि होने के कारण आपकी कहानियों में कल्पना और भावुकता की अधिकता है। आपकी अधिकतर कहानियाँ ऐतिहासिक है। दार्शनिक होने के कारण आपने कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द से भिन्न शैली का अनुसरण किया। कहानी साहित्य में आपका एक महत्वपूर्ण स्थान है।

पाठ परिचय

'मधुआ' प्रसाद जी की श्रेष्ठ एवं सरल कहानियों में से एक है। ठाकुर सरदार सिंह को कहानी सुनने का चसका था। शराबी उन्हें तरह-तरह की कहानियाँ सुनाता है बदले में वह शराबी को एक रुपया देते हैं - उसी जगह शराबी की मुलाकात एक छोटे से बालक से होती है -

जिसका नाम है मधुआ। ठाकुर साहब के जमादार लल्लू की डाट–डपट व कुँवर साहब की मार खाकर मधुआ सिसकियाँ ले रहा होता है – भूख से निढाल छोटा सा मधुआ आखिर में शराबी के साथ चल पड़ता है – शराबी उसे बार–बार रोकता है – पर वह शराबी के पास रहकर हर दुःख झेलने को तैयार है – लेकिन मधुआ के आँसू, उसकी सिसकियाँ शराबी के अन्दर की ममता व वत्सल भावना को झंकझोर देती है – न जाने कौन भी भावना उसे शराब की बोतल की जगह मिठाई–पूरी और नमकीन खरीदने को विवश कर देती है और निठल्ला रहने वाला शराबी – एक बार फिर से एक बच्चे को पालने के लिए काम पर निकल पड़ता है। प्रसाद जी ने 'शराबी' के हृदय परिवर्तन और मद्‌यपान निषेध को एक निरीह–भोले भाले बालक द्वारा दिखाया है अतः स्नेह व ज़िम्मेदारी की भावना नशाबन्दी में सहायक हो सकती है – इसका सुन्दर चित्रांकन है।

मधुआ

'आज सात दिन हो गये, पीने को कौन कहे, छुआ तक नहीं। आज सातवाँ दिन है सरकार !'

'तुम झूठ हो! अभी तो तुम्हारे कपड़े से महक आ रही है।'

'वह...वह तो कई दिन हुए। सात दिन से ऊपर – कई दिन हुए – अंधेरे में बोतल उड़ेलने लगा। कपड़े पर गिर जाने से नशा भी न आया। और आपको कहने को...क्या कहूँ...सच मानिए, सात दिन – ठीक सात दिन से एक बूँद भी नहीं।'

ठाकुर सरदार सिंह हँसने लगे। लखनऊ में लड़का पढ़ता था। ठाकुर साहब भी कभी-कभी वहीं आ जाते। उनको कहानी सुनने का चसका था। खोजने पर यही शराबी मिला। वह रात को, दोपहर में, कभी-कभी सवेरे भी आ जाता। अपनी लच्छेदार कहानी सुनाकर ठाकुर का मनोविनोद करता।

ठाकुर ने हँसते हुए कहा – 'तो आज पियोगे न?'

'झूठ कैसे कहूँ। आज तो जितना मिलेगा, सबकी पीऊँगा। सात दिन चने-चबेने पर बिताये हैं, किसलिए?'

'अद्भुत ! सात दिन पेट काटकर आज अच्छा भोजन न करके तुम्हें पीने की सूझी है? यह भी ....'

'सरकार। मौज-बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिये जा सकते हैं।'

'अच्छा आज दिन भर तुमने क्या-क्या किया?'

'मैंने? अच्छा सुनिए – सवेरे कुहरा पड़ता था, मेरे धुँआ से कम्बल-सा वह भी सूर्य के चारों ओर लिपटा था। हम दोनों मुँह छिपाये पड़े थे।'

ठाकुर साहब ने हँसकर कहा – 'अच्छा तो मुँह छिपाने का कोई कारण?'

'सात दिन से एक बूँद भी गले में न उतरी थी। भला मैं कैसे मुँह दिखा सकता था । और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुँह धोने में जो दुख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है? पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे । कटकटी लग रही थी। पराठे वाले के यहाँ पहुँचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया। घूमते-घूमते अंधेरा हो गया, बूँदें पड़ने लगीं। तब कहीं भगा आपके पास आ गया।'

'अच्छा, जो उस दिन तुमने गडरिये वाली कहानी सुनायी थी जिसमें आसुफद्दौला ने उसकी लड़की का आँचल भुने हुए भुट्टे के दानों के बदले मोतियों से भर दिया था, यह क्या सच है?'

'सच? अरे वह गरीब लड़की भूख से उसे चबाकर थू थू करने लगी.... रोने लगी . ऐसी निर्दय दिल्लगी बड़े लोग ही कर बैठते हैं। सुना है श्रीरामचंद्र ने भी हनुमान से ऐसा ही......'

ठाकुर साहब ठठाकर हँसने लगे। पेट पकड़कर हँसते-हँसते लोट गये। सांस बटोरते हुए सम्हलकर बोले – 'और बड़प्पन कहते किसे हैं? कंगाल तो कंगाल! गधी लड़की! भला उसने कभी मोती देखे थे, चबाने लगी होगी। मैं सच कहता हूँ, आज तक तुमने जितनी कहानियाँ सुनायीं, सब में बड़ी टीस थी। शहजादों के दुखड़े, रंग-महल की अभागिनी बेगमों के निष्फल प्रेम, करुण-कथा और पीड़ा से भरी हुई कहानियाँ ही तुम्हें आती हैं, पर ऐसी हँसाने वाली कहानी और सुनाओ, तो मैं तुम्हें अपने सामने ही बढ़िया शराब पिला सकता हूँ।'

'सरकार। बूढ़ी से सुने वे नवाबों के सोने से दिन, अमीरों की रंगरलियाँ, दुखड़े की दर्द भरी आहें, रंग-महलों में घुल-घुलकर मरने वाली बेगमें, अपने आप सिर में चक्कर काटती रहती हैं। मैं उनकी पीड़ा से रोने लगता हूँ। अमीर कंगाल हो जाते हैं। बड़ों-बड़ों के घमंड चूर होकर धूल में मिल जाते हैं। तब भी दुनिया बड़ी पागल है। मैं उसके पागलपन को भूलने के लिए शराब पीने लगता हूँ – सरकार! नहीं तो यह बुरी बला कौन अपने गले लगता?

ठाकुर साहब ऊँघने लगे थे। अंगीठी का कोयला दहक रहा था। शराबी सरदी से ठिठुरा जा रहा था। वह हाथ सेंकने लगा। सहसा नींद से चौंककर ठाकुर साहब ने कहा 'अच्छा जाओ, मुझे नींद लग रही है। वह देखो, एक रुपया पड़ा है, उठा लो। लल्लू को भेजते जाओ ।''

शराबी रुपया उठाकर धीरे से खिसका। लल्लू ठाकुर साहब का जमादार था। उसे खोजते हुए जब वह फाटक पर की बगल वाली कोठरी के पास पहुँचा, तो उसे सुकुमार कंठ से सिसकने का शब्द सुनायी पड़ा। वह खड़ा होकर सुनने लगा।

'तो सूअर रोता क्यों है? कुँवर साहब ने दो ही लात तो लगायी है। कुछ गोली तो नहीं मार दी?' – कर्कश स्वर में लल्लू बोल रहा था, किंतु उत्तर में सिसकियों के साथ एकाध हिचकी भी सुनायी पड़ जाती थी। अब और भी कठोरता से लल्लू ने कहा –'मधुआ। जा सो रह। नखरा न कर, नहीं तो उठूँगा तो खाल उधेड़ दूँगा। समझा न?'

शराबी चुपचाप सुन रहा था। बालक की सिसकी और बढ़ने लगी। फिर उसे सुनायी पड़ा – 'ले अब भागता है कि नहीं? क्यों मार खाने पर तुला है?'

भयभीत बालक बाहर चला आ रहा था। शराबी ने उसके छोटे-से सुन्दर गोरे मुँह को देखा। आँसू की बूँदे ढुलक रही थीं। बड़े दुलार से उसका मुँह पोंछते हुए उसे लेकर वह फाटक के बाहर चला आया। दस बज रहे थे। कड़ाके की सरदी थी। दोनों चुपचाप चलने लगे। शराबी की मौन सहानुभूति को उस छोटे से सरल हृदय ने स्वीकार कर लिया। वह चुप हो गया। अभी वह एक तंग गली पर रुका ही था कि बालक के फिर सिसकने की उसे आहट लगी। वह झिड़क कर बोल उठा–

'अब क्यों रोता है रे छोकरे?'

'मैंने दिन-भर से कुछ खाया नहीं।''

'कुछ खाया नहीं। इतने बड़े अमीर के यहाँ रहता है और दिन-भर तुझे खाने को नहीं मिला?''

'यही तो मैं कहने गया था जमादार के पास, मार तो रोज ही खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला। कुँवर साहब का ओवर-कोट लिये खेल में दिन-भर साथ रहा। सात बजे लौटा, तो और भी नौ बजे तक कुछ काम करना पड़ा। आटा रख नहीं सका था। रोटी बनती तो कैसे? जमादार से कहने गया था।' भूख की बात कहते-कहते बालक ऊपर उसकी दीनता और भूख ने एक साथ ही जैसे आक्रमण कर दिया। वह फिर हिचकियाँ लेने लगा।

शराबी उसका हाथ पकड़कर घसीटता हुआ गली में ले गया। एक गंदी कोठरी का दरवाज़ा ढकेलकर, बालक को लिये हुए वह भीतर पहुँचा। टटोलते हुए सलाई से मिट्टी की ढेबरी जलाकर वह फटे कम्बल के नीचे से कुछ खोजने लगा। एक पराठे का टुकड़ा मिला। शराबी उसे बालक के हाथ में देकर बोला – 'तब तक तू इसे चबा, मैं तेरा गढ़ा भरने के लिए कुछ और ले आऊँ –

'सुनता है रे छोकरे। रोना मत, रोयेगा तो खूब पीटूँगा। मुझे रोने से बड़ा बैर है। पाजी कहीं का, मुझे भी रुलाने का.....

शराबी गली के बाहर भागा। उसके हाथ में एक रुपया था। बारह आने का एक देशी अद्धा और दो आने की चाय, दो आने की पकौड़ी...... नहीं-नहीं आलू, मटर.... अच्छा न सही। चार आने का माँस ही ले लूँगा, पर यह छोकरा। इसका गढ़ा जो भरना होगा, यह कितना खायेगा? ओह। आज तक तो कभी मैने दूसरों के खाने का सोच किया ही नहीं। तो क्या ले चलूँ? पहले एक अद्धा ही ले चलूँ।

इतना सोचते-सोचते उसकी आँखों पर बिजली के प्रकाश की झलक पड़ी। उसने अपने को मिठाई की दुकान पर खड़ा पाया। वह शराब का अद्धा लेना भूल कर मिठाई-पूरी खरीदने लगा। नमकीन लेना भी न भूला। पूरा एक रुपये का सामान लेकर वह दुकान से हटा। जल्द पहुँचने के लिए एक तरह से दौड़ने लगा। अपनी कोठरी में पहुँच उसने दोनों की पाँत बालक के सामने सजा दी। उसकी सुगंध से बालक के गले में एक तरावट पहुँची। वह मुस्कराने लगा।

शराबी ने मिट्टी की गगरी से पानी उड़ेलते हुए कहा - 'नटखट कहीं का, हँसता है। सोंधी वास नाक में पहुँची न। ले खूब ठूँसकर खा ले और फिर रोया कि पीटा !'

दोनों ने बहुत दिन पर मिलने वाले दो मित्रों की तरह साथ बैठकर भर पेट खाया। सीली जगह में सोते हुए बालक ने शराबी का पुराना बड़ा कोट ओढ़ लिया था। जब उसे नींद आ गयी, तो शराबी भी कम्बल तानकर बड़बड़ाने लगा 'सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोउँगा; लेकिन वह छोटा-सा रोना, पाजी, न जाने कहाँ से आ धमका।'

*****

एक चिन्तापूर्ण आलोक में आज पहले-पहल शराबी ने आँख खोलकर कोठरी में बिखरी हुई दारिद्रय की विभूति को देखा, और घुटनों से ठुड्डी लगाये हुए उस निरीह बालक को। उसने तिलमिलाकर मन-ही-मन प्रश्न किया-किसने ऐसे सुकुमार फूलों को कष्ट देने के लिए निर्दयता की सृष्टि की? आह री नियति ! तब इसको लेकर मुझे घरबारी बनना पड़ेगा क्या? दुर्भाग्य! जिसे मैंने कभी सोचा भी न था। मेरी इतनी माया-ममता, जिस पर आज तक केवल बोतल का ही पूरा अधिकार था- इसका पक्ष क्यों लेने लगी? इस छोटे से पाजी ने मेरे जीवन के लिए कौन-सा इंद्रजाल रचने का बीड़ा उठाया है। तब क्या करूँ? कोई काम करूँ? कैसे दोनों का पेट चलेगा। नहीं, भगा दूँ इसे-आँख तो खोल।

बालक अंगड़ाई ले रहा था। वह उठ बैठा। शराबी ने कहा - 'ले, उठ, कुछ खा ले।अभी रात का बचा हुआ है, और अपनी राह देख। तेरा नाम क्या है रे?

बालक ने सहज हँसी हँसकर कहा-'मधुआ! भला हाथ-मुँह भी न धोऊँ, खाने लगूँ। जाऊँगा कहाँ?'

'आह। कहाँ बताऊँ इसे कि चला जाय। कह दूँ कि भाड़ में जा ; किन्तु वह आज तक दुख की भट्टी में जलता ही तो रहा है। तो.... वह चुपचाप घर से झल्लाकर सोचता हुआ निकला– 'ले पाजी, अब यहाँ लौटूँगा ही नहीं। तू ही इस कोठरी में रह।'

शराबी घर से निकला। गोमती–किनारे पहुँचने पर उसे स्मरण हुआ कि वह कितनी ही बातें सोचता आ रहा था ; पर कुछ भी सोच न सका। हाथ–मुँह धोने लगा। उजली हुई धूप निकल आयी थी। वह चुपचाप गोमती की धारा को देख रहा था। धूप की गरमी से सुखी होकर वह चिन्ता भुलाने का प्रयत्न कर रहा था कि किसी ने पुकारा–

'भले आदमी रहे कहाँ? सालों पर दिखायी पड़े। तुमको खोजते–खोजते मैं थक गया।'

शराबी ने चौंककर देखा। वह कोई जान–पहचान का तो मालूम होता था; पर कौन है, ठीक–ठीक न जान सका।

उसने फिर कहा– 'तुम्हीं से कह रहे हैं। सुनते हो, उठा ले जाओ अपनी सान धरने की कल, नहीं तो सड़क पर फेंक दूँगा। एक ही कोठरी जिसका मैं दो रुपये किराया देता हूँ, उसमें क्या मुझे अपना कुछ रखने के लिए नहीं हैं?'

'ओहो। रामजी तुम हो, भई मैं भूल गया था। तो चलो, आज ही उसे उठा लाता हूँ। कहते हुए शराबी ने सोचा– अच्छी रही, उसी को बेचकर कुछ दिनों तक काम चलेगा।

गोमती नहाकर, रामजी उसका साथी, पास ही अपने घर पर पहुँचा। शराबी को कल देते हुए उसने कहा–ले जाओ, किसी तरह मेरा इससे पिंड छूटे।

बहुत दिनों पर आज उसको कल ढोना पड़ा। किसी तरह अपनी कोठरी में पहुँचकर उसने देखा कि बालक चुपचाप बैठा है। बड़बड़ाते हुए उसने पूछा–'क्यों रे, तूने कुछ खा लिया कि नहीं?'

'भर–पेट खा चुका हूँ, और वह देखो तुम्हारे लिए भी रख दिया है।' कह कर उसने अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी से उस रूखी कोठरी को तर कर दिया।

शराबी एक क्षण–भर चुप रहा। फिर चुपचाप जलपान करने लगा। मन ही मन सोच रहा था– यह भाग्य का संकेत नहीं तो और क्या है? चलूँ फिर कल लेकर सान देने का काम चलता करूँ। दोनों का पेट भरेगा। वहीं पुराना चरखा फिर सिर पर पड़ा। नहीं तो, दो बातें किस्सा–कहानी, इधर–उधर की कहकर अपना काम चला ही लेता था। फिर अब तो बिना कुछ किये घर नहीं चलने का। जल पीकर बोला– 'क्यों रे मधुआ, अब तू कहाँ जायेगा?'

'कहीं नहीं।'

'यह लो, तो फिर क्या यहाँ जमा गड़ी है कि मैं खोद-खोदकर तुझे मिठाई खिलाता रहूँगा।'

'तब कोई काम करना चाहिए।'

'करेगा?'

'जो कहो?'

'अच्छा तो आज से मेरे साथ-साथ घूमना पड़ेगा। यह कल तेरे लिए लाया हूँ। चल आज से तुझे सान देना सिखाऊँगा। कहाँ रहूँगा, इसका कुछ नहीं। पेड़ के नीचे रात बिता सकेगा न?'

'कहीं भी रह सकूँगा, पर उस ठाकुर की नौकरी न कर सकूँगा!' शराबी ने एक बार स्थिर दृष्टि से उसे देखा। बालक की आँखें दृढ़ निश्चय की सौगंध खा रही थीं।

शराबी ने मन ही मन कहा- बैठे-बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगंध लेनी पड़ी।

वह साथ ले जाने वाली वस्तुओं को बटोरने लगा। एक गट्ठर का और दूसरा कल का, दो बोझ हुए।

शराबी ने पूछा- तू किसे उठायेगा?

'जिसे कहो।'

'अच्छा, तेरा बाप जो मुझको पकड़े तो?'

'कोई नहीं पकड़ेगा, चलो भी। मेरे बाप मर गये।'

शराबी आश्चर्य से उसका मुँह देखता हुआ कल उठाकर खड़ा हो गया। बालक ने गठरी लादी। दोनों कोठरी छोड़कर चल पड़े।

शब्दार्थ

खुमारी	-	नशा	पाँत	-	पंक्ति
दिल्लगी	-	हँसी मज़ाक	दारिद्रय	-	गरीबी, निर्धनता
कंगाल	-	गरीब, निर्धन	इन्द्रजाल	-	मायाजाल

कर्कश	– कठोर, तीव्र	ढेबरी	– दीपक के काम आने वाली टीन, शीशे, मिट्टी आदि की बनी डिबिया
गढ़ा भरना	– पेट भरना	सान धरने की कल	– पत्थर की वह चक्की जिस पर उस्तरा, कैंची आदि की धार तेज़ की जाती है।

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'मधुआ' कहानी में लेखक ने एक बालक द्वारा शराबी के हृदय परिर्वतन का सुन्दर चित्रांकन किया है। स्पष्ट करें।
2. 'मधुआ' कहानी का नामकरण कहाँ तक सार्थक है?
3. 'मधुआ' कहानी द्वारा लेखक ने मद्य पान के कुप्रभावों को सामने रखते हुए दायित्व और स्नेह द्वारा इस समस्या का अनूठा समाधान ढूँढा है – आपके इस विषय में क्या विचार हैं।

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

4. 'मधुआ' कहानी के आधार पर 'मधुआ' का चरित्र चित्रण करो।
5. 'मधुआ' कहानी के आधार पर 'शराबी' का चरित्र चित्रण करें।
6. 'मधुआ' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करें।
7. 'मधुआ' कहानी के माध्यम से प्रसाद जी ने समाज की कई समस्याओं का समाधान किया है- आपके विचार में वे समस्याएँ क्या हैं और लेखक ने उन्हें कैसे हल किया हैं?

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

1. ''मौज बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दु:खपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिए जा सकते हैं।''
2. ''सोचा था, आज सात दिन पर भर पेट पीकर सोऊँगा, लेकिन वह छोटा-सा रोना, पाजी न जाने कहाँ से आ धमका।''
3. बैठे-बैठाये यह हत्या कहाँ से लगी। अब तो शराब न पीने की मुझे भी सौगंध लेनी पड़ी।

*****

22. जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी साहित्य में एक प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार, निबन्धकार व मौलिक विचारक के रूप में माने जाते हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के ज़िला अलीगढ़ के कौड़ियागंज गाँव में 1905 ई० में हुआ था। जब ये चार वर्ष के ही थे तब इनके पिता जी का देहावसान हो गया। उनकी आरंभिक शिक्षा हस्तिनापुर, ज़िला मेरठ में हुई। 1919 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक करने के बाद उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। उन दिनों गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था जैनेन्द्र ने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। सन् 1912 में विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़कर आप स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए दिल्ली आ गए।

जैनेन्द्र जी ने अपनी आजीविका के लिए पहले कुछ समय तक व्यापार किया, लेकिन उसमें अधिक सफल न रहे। अत: आप नौकरी की तलाश में कलकत्ता आ गए। किन्तु सफलता न मिली। इसलिए आपने स्वतन्त्र लेखन को ही अपनी ज़िन्दगी का ध्येय बना लिया। जैनेन्द्र जी ने एक लेखक के रूप में प्रसिद्धि और मान सम्मान पाया। आपने सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं जो 'ध्रुवयात्रा', 'नीलम देश की राजकन्या', 'एक रात', 'फाँसी' आदि कहानी संग्रहों में संकलित हैं। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' 'अनामस्वामी' आपके बहुचर्चित उपन्यास हैं। इनकी साहित्य साधना को देखकर भारत सरकार ने 1970 ई० में इनको 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी 1937 ई० में इन्हें डी. लिट् की मानद उपाधि से विभूषित किया।

जैनेन्द्र ने अपनी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक दृष्टि पर अधिक बल दिया है। इसलिए इनकी कहानी व उपन्यास में मनोभावों एवं संवेदनाओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। इनके कथा साहित्य में व्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। इनकी कुछ कहानियों में दार्शनिक में चिन्तन इतना उभर आया है कि वह कहानी के कहानीपन पर हावी हो जाता है। वर्णन की जगह इनकी प्रवृति विश्लेषण की अधिक है। इसलिए इनकी कहानियों में भावुकता तथा कल्पना की जगह विचार तत्व की प्रमुखता है जिस कारण इनकी भाषा शैली कुछ जटिल है। जैनेन्द्र जी का हिन्दी कथा साहित्य में अपनी विलक्षणता के लिए महत्वपूर्ण स्थान है।

पाठ परिचय

'तत्सत्' कहानी में जैनेन्द्र जी ने पशुओं एवं वनस्पतियों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि आज व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सत्ता के आगे कुछ भी नहीं सोच पाता है। उसे यह विस्मृत हो गया है कि उसका अस्तित्व समग्र के एक खंड के रूप में इस प्रकार है जैसे वाटिका में एक पुष्प पादप का।

प्रस्तुत कहानी में पेड़-पौधों और पशुओं को अपने अपने अलग अस्तित्व का ही बोध है। वे सबके सब समग्र रूप से अनजान हैं। वे वन के अंश के रूप में अपने को नहीं देख पाते हैं और अपनी अज्ञानता के कारण अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग अलापते रहते हैं। अन्ततः समग्रता का बोध होने पर वे बड़वन की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं। इस कहानी से यह संदेश भी मिलता है कि अगर 'हम एक हैं' तो कोई भी हमारा अहित नहीं कर सकता तथा देशहित के आगे हमारा निजी स्वार्थ क्षुद्र है।

तत्सत्

एक गहन वन में दो शिकारी पहुँचे। वे पुराने शिकारे थे। शिकार की टोह में दूर-दूर घूम रहे थे, लेकिन ऐसा घना जंगल उन्हें नहीं मिला था। देखते ही जी में दहशत होती थी। वहाँ एक बड़े पेड़ की छाँह में उन्होंने वास किया और आपस में बातें करने लगे।

एक ने कहा, ''आह, कैसा भयानक जंगल है।''
दूसरे ने कहा, ''और कितना घना वन है।''

इसी तरह कुछ देर बात करके और विश्राम करके वे शिकारी आगे बढ़ गए। उनके चले जाने पर पास के शीशम के पेड़ ने बड़ से कहा, ''बड़ दादा, अभी छाँह में ये कौन थे? वे गए?''

बड़ ने कहा, ''हाँ गए। तुम उन्हें नहीं जानते हो?''

शीशम ने कहा, ''नहीं, वे बड़े अजब मालूम होते थे। कौने थे, दादा?''

दादा ने कहा, ''जब छोटा था, तब इन्हें देखा था। इन्हें आदमी कहते हैं। इनमें पत्ते नहीं होते, तना ही तना है। देखा, वे चलते कैसे हैं? अपने तने की दो शाखों पर ही चलते चले जाते हैं।''

शीशम - ''ये लोग इतने ही ओछे रहते हैं, ऊँचे नहीं उठते, क्यों दादा?''

बड़ दादा ने कहा, ''हमारी-तुम्हारी तरह इनमें जड़े नहीं होतीं। बढ़े तो काहे पर? इससे वे इधर-उधर चलते रहते हैं, ऊपर की ओर बढ़ना उन्हें नहीं आता। बिना जड़ न जाने ये जीते किस तरह हैं।''

इतने में बबूल, जिसमें हवा साफ़ छनकर निकल जाती थी, रुकती नहीं थी और जिसके तन पर काँटे थे, बोला, ''दादा, ओ दादा, तुमने बहुत दिन देखे हैं। बताओ कि किसी वन को भी देखा है? ये आदमी किसी भयानक वन की बात कर रहे थे। तुमने उस भयावने वन को देखा है?''

शीशम ने कहा, ''दादा, हाँ, सुना तो मैंने भी था। वह वन क्या होता है?''

बड़ दादा ने कहा, ''सच पूछो तो भाई, इतनी उमर हुई, उस भयावने वन को तो मैंने भी नहीं देखा। सभी जानवर मैंने देखे हैं। शेर, चीता, भालू, हाथी, भेड़िया। पर वन नाम के जानवर को मैंने अब तक नहीं देखा।'

एक ने कहा, ''मालूम होता है, वह शेर-चीतों से भी डरावना होता है।''

दादा ने कहा, ''डरवाना जाने तुम किसे कहते हो? हमारी तो सबसे प्रीति है।''

बबूल ने कहा, ''दादा, प्रीत की बात नहीं है। मैं तो अपने पास काँटे रखता हूँ। पर वे आदमी वन को भयावना बताते थे। ज़रूर वह शेर-चीतों से बढ़कर होगा।''

दादा, ''सो तो होता ही होगा। आदमी एक टूटी-सी टहनी से आग की लपट छोड़कर शेर-चीतों को मार देता है। उन्हें ऐसे करते अपने सामने हमने देखा है। पर वन की लाश हमने नहीं देखी। वह ज़रूर कोई बड़ा ख़ौफ़नाक जीव होगा।''

इसी तरह उनमें बातें होने लगीं। वन को उनमें कोई नहीं जानता था। आस-पास के और पेड़ साल, सेमर, सिरस उस बातचीत में हिस्सा लेने लगे। वन को कोई मानना नहीं चाहता था। किसी को उसका कुछ पता नहीं था। पर अज्ञात भाव से उसका डर सबको था। इतने में पास ही जो बाँस खड़ा था और जो ज़रा हवा चलने पर खड़-खड़, सन्-सन् करने लगता था, उसने अपनी जगह से ही सीटी-सी आवाज़ देकर कहा, ''मुझे बताओ, मुझे बताओ, क्या बात है। मैं पोला हूँ। मैं बहुत जानता हूँ।''

बड़ दादा ने गंभीर वाणी से कहा, ''तुम तीखा बोलते हो। बात यह है कि बताओ तुमने वन देखा है? हम लोग सब उसको जानना चाहते हैं।''

बाँस ने रीती आवाज़ से कहा, ''मालूम होता है, हवा मेरे भीतर के रिक्त में वन-वन-वन ही कहती हुई घूमती रहती है। पर ठहरती नहीं। हर घड़ी सुनता हूँ, वन है, वन है पर मैं उसे जानता नहीं हूँ। क्या वह किसी को दीखा है?''

बड़ दादा ने कहा, ''बिना जाने फिर तुम इतना तेज़ क्यों बोलते हो?''

बाँस ने सन्-सन् की ध्वनि में कहा, ''मेरे अंदर हवा इधर से उधर बहती रहती है, मैं खोखला जो हूँ। मैं बोलता नहीं, बजता हूँ। वहीं मुझसे बोलती है?''

बड़ ने कहा, ''वंश बाबू, तुम घने नहीं हो, सीधे ही सीधे हो। कुछ भरे होते तो झुकना

जानते। लंबाई में सब कुछ नहीं है।''

वंश बाबू ने तीव्रता से खड़-खड़, सन्-सन् किया कि ऐसा अपमान वह नहीं सहेंगे। देखो, वह कितने ऊँचे हैं।

बड़ दादा ने उधर से आँख हटाकर फिर और लोगों से कहा कि हम सबको घास से इस विषय में पूछना चाहिए। उसकी पहुँच सब कहीं हैं। वह कितनी व्याप्त है और ऐसी बिछी रहती है कि किसी को उससे शिकायत नहीं होगी।

तब सबने घास से पूछा, ''घास री घास, तू वन को जानती है?''

घास ने कहा, ''नहीं तो दादा, मैं उन्हें नहीं जानती। लोगों की जड़ों को ही मैं जानती हूँ। उनके फल मुझसे ऊँचे रहते हैं। पदतल के स्पर्श से सबका परिचय मुझे मिलता है। जब मेरे सिर पर चोट ज्यादा पड़ती है, समझती हूँ यह ताकत का प्रणाम है। धीमे कदम से मालूम होता है, यह कोई दुखियारा जा रहा है।''

''दुख से मेरी बहुत बनती है, दादा। मैं उसी को चाहती हुई यहाँ से वहाँ तक बिछी रहती हूँ। सभी कुछ मेरे ऊपर से निकलता है। पर वन को मैंने अलग करके कभी नहीं पहचाना।''

दादा ने कहा, ''तुम कुछ नहीं बतला सकती?''
घास ने कहा, ''मैं बेचारी क्या बतला सकती हूँ, दादा।''

तब बड़ी कठिनाई हुई। बुद्धिमती घास ने जवाब दिया। वाग्मी वंश बाबू भी कुछ न बता सके। और बड़ दादा स्वयं अत्यंत जिज्ञासु थे। किसी के समझ में नहीं आया कि इस वन नाम के भयानक जंतु को कहाँ से, कैसे जाना जाए।

इतने में पशुराज सिंह वहाँ आए। पैने दाँत थे, बालों से गरदन शोभित थी, पूँछ उठी हुई थी : धीमी गर्वीली गति से वह आए और किलक किलककर बहते जाते हुए निकट एक चश्मे में से पानी पीने लगे।

बड़ दादा ने पुकार कर कहा, ''ओ सिंह भाई, तुम बड़े पराक्रमी हो, जाने कहाँ-कहाँ छापा मारते हो। एक बात तो बताओ, भाई?''

शेर ने पानी पीकर गर्व से ऊपर को देखा। दहाड़कर कहा, ''कहो, क्या कहते हो?''

बड़ दादा ने कहा, ''हमने सुना है कि कोई वन होता है, जो यहाँ आस-पास है और बड़ा भयानक है। हम तो समझते थे कि तुम सबको जीत चुके हो। उस वन से कभी तुम्हारा

मुकाबला हुआ है? बताओ वह कैसा होता है?

''शेर ने दहाड़कर कहा, ''लाओ सामने वह वन, जो अभी मैं उसे फाड़-चीरकर न रख दूँ। मेरे सामने वह भला क्या हो सकता है।''

बड़ दादा ने कहा, ''तो वन से कभी तुम्हारा सामना नहीं हुआ''

शेर ने कहा, ''सामना होता, तो क्या वह जीता बच सकता था। मैं अभी दहाड़ देता हूँ। है अगर कोई वन, तो आए वह सामने। खुली चुनौती है। या वह है या मैं हूँ।''

ऐसा कहकर उस वीर सिंह ने वह तुमुल घोर गर्जन किया कि दिशाएँ काँपने लगीं। बड़ दादा के देह के पत्र खड़-खड़ करने लगे। उनके शरीर के कोटर में वास करते हुए शावक चीं-चीं कर उठे। चहुँओर जैसे आतंक भर गया पर वह गर्जन गूँजकर रह गई। हुँकार का उत्तर कोई नहीं आया।

सिंह ने उस समय गर्व से कहा, ''तुमने यह कैसे जाना कि कोई वन है और वह आस-पास रहता है। जब मैं हूँ आप सब निर्भय रहिए कि वन कोई नहीं है कही नहीं है। मैं हूँ, तब किसी और का खटका आपको नहीं रखना चाहिए।''

बड़ दादा ने कहा, ''आपकी बात सही है। मुझे यहाँ सदियाँ हो गई हैं। वन होता तो दीखता अवश्य। फिर आप हो, तब कोई और क्या होगा। पर वे दो शाखा पर चलने वाले जीव जो आदमी होते हैं, वे ही यहाँ मेरी छाँह में बैठकर उस वन की बात कर रहे थे। ऐसा मालूम होता है कि ये बे-जड़ के आदमी हमसे ज़्यादा जानते हैं।''

सिंह ने कहा, ''आदमी को मैं खूब जानता हूँ। मैं उसे खाना पसंद करता हूँ। उसका माँस मुलायम होता है, लेकिन वह चालाक जीव है। उसको मुँह मारकर खा डालो, तब तो वह अच्छा है, नहीं तो उसका भरोसा नहीं करना चाहिए। उसकी बात-बात में धोखा है।''

बड़ दादा तो चुप रहे, लेकिन औरों ने कहा कि सिंहराज, तुम्हारे भय से बहुत से जंतु छिपकर रहते हैं। वे मुँह नहीं दिखाते। वन भी शायद छिपकर रहता हो? तुम्हारा दबदबा कोई कम तो नहीं है। इससे जो साँप धरती में मुँह गाड़कर रहते हैं, ऐसी भेद की बातें उनसे पूछनी चाहिएं। रहस्य कोई जानता होगा, तो अंधरे में मुँह गाड़कर रहने वाला साँप जैसा जानवर ही जानता होगा। हम पेड़ तो उजाले से सिर उठाए खड़े रहते हैं। इसलिए हम बेचारे क्या जानें।

शेर ने कहा कि जो मैं चाहता हूँ, वही सच है। उसमें शक करने की हिम्मत ठीक नहीं है। जब तक मैं हूँ, कोई डर न करो। कैसा साँप और जैसा कुछ और। क्या कोई मुझसे ज़्यादा जानता है?

बड़ दादा यह सुनते हुए अपनी दाढ़ी की जटाएँ नीचे लटकाए बैठे रह गए, कुछ नहीं बोले। औरों ने भी कुछ नहीं कहा। बबूल के काँटे ज़रूर उस वक्त तनकर कुछ उठ आए थे। लेकिन फिर भी बबूल ने धीरज नहीं छोड़ा और मुँह नहीं खोला।

अंत में जम्हाई लेकर मंथर गति से सिंह वहाँ से चले गए।

भाग्य की बात कि साँझ का झुटपुटा होते-होते चुप-चाप घास में से जाते हुए दीख गए चमकीली देह के नागराज। बबूल की निगाह तीखी थी। झट से बोला, ''दादा। ओ बड़ दादा, वह जा रहे हैं सर्पराज। ज्ञानी जीव हैं। मेरा तो मुँह उनके सामने कैसे खुल सकता है। आप पूछिए तो ज़रा कि वन का ठौर-ठिकाना क्या उन्होंने देखा है?''

बड़ दादा शाम से ही मौन हो रहते हैं। वह उनकी पुरानी आदत है। बोले, ''संध्या आ रही है। इस समय वाचालता नहीं चाहिए।''

बबूल झक्की ठहरे। बोले, 'बड़ दादा, साँप धरती से इतना चिपककर रहते हैं कि सौभाग्य से हमारी आँखें उन पर पड़ती हैं। और यह सर्प अतिशय श्याम है, इससे उतने ही ज्ञानी होंगे। वर्ण देखिए न, कैसा चमकता है। अवसर खोना नहीं चाहिए। इनसे कुछ रहस्य पा लेना चाहिए।''

बड़ दादा ने तब गंभीर वाणी से साँप को रोककर पूछा कि हे नाग, हमें बताओ कि वन का वास कहाँ है और वह स्वयं क्या है?

साँप ने साश्चर्य कहा, ''किसका वास? वह कौन जंतु है? और उसका वास पाताल तक तो कहीं है नहीं।''

बड़ दादा ने कहा कि हम कोई उसके संबंध में कुछ नहीं जानते। तुमसे जानने की आशा रखते हैं। जहाँ ज़रा छिद्र हो, वहाँ तुम्हारा प्रवेश है। कोई टेढ़ा-मेढ़ापन तुमसे बाहर नहीं है। इससे तुमसे पूछा है।

साँप ने कहा, ''मैं धरती के सारे गर्त जानता हूँ। भीतर दूर तक पैठकर उसी के अंतर्भेद को पहचानने में लगा रहा हूँ। वहाँ ज्ञान की खान है। तुमको अब क्या बताऊँ। तुम नहीं समझोगे। तुम्हारा वन, लेकिन कोई गहराई की सच्चाई नहीं जान पड़ती। वह कोई बनावटी सतह की चीज़ है। मेरा वैसा ऊपरी और उथली बातों से वास्ता नहीं रहता।''

बड़ दादा ने कहना चाहा कि तो वह-

साँप ने कहा, ''वह फ़र्ज़ी है।'' यह कहकर वह आगे बढ़ गए।

मतलब यह है कि सब जीव-जंतु और पेड़-पौधे आपस में मिले और पूछताछ करने लगे कि वन को कौन जानता है और वह कहाँ है, क्या है? उनमें सबको ही अपना-अपना ज्ञान था। अज्ञानी, कोई नहीं था। पर उस वन का जानकार कोई नहीं था। एक नहीं जाने, दो नहीं जाने, दस-बीस नहीं जाने, लेकिन जिसको कोई नहीं जानता, ऐसी भी भला कोई चीज़ कभी हुई है या हो सकती है? इसलिए उन जंगली जंतुओं में और वनस्पतियों में खूब चर्चा हुई, खूब चर्चा हुई। दूर-दूर तक उनकी तू-तू मैं-मैं सुनाई देती थी। ऐसी चर्चा हुई, ऐसी चर्चा हुई कि विद्याओं पर विद्याएँ उसमें से प्रस्तुत हो गई। अंत में तय पाया कि दो टाँगों वाला आदमी ईमानदार जीव नहीं है उसने तभी वन की बात बनाकर कह दी है। सच में वह नहीं है।

उस निश्चय के समय बड़ दादा ने कहा कि भाइयो, उन आदमियों को फिर आने दो। इस बार साफ़-साफ़ उनसे पूछना है कि बताएँ, वन क्या है। बताएँ तो बताएँ नहीं तो खामखाह झूठ बोलना छोड़ दे। लेकिन उनसे पूछने से पहले उस वन से दुश्मनी ठानना हमारे लिए ठीक नहीं है। वह भयावना बताते हैं। जाने वह और क्या हो?

लेकिन बड़ दादा की वहाँ विशेष चली नहीं। जवानों ने कहा कि ये बूढ़े हैं, इनके मन में तो डर बैठा है और जंगल के न होने का फैसला पास हो गया।

एक रोज़ आफ़त के मारे फिर वे शिकारी उस जगह आए। उनका आना था कि जंगल जाग उठा। बहुत से जीव-जंतु, झाड़ी पेड़ तरह-तरह की बोली बोलकर अपना विरोध दरसाने लगे। वे मानो उन आदमियों की भर्त्सना कर रहे थे। आदमी बेचारों को अपनी जान का संकट मालूम होने लगा। उन्होंने बंदूकें सभांली। इस टूटी-सी टहनी को, जो आग उगलती है, वह बड़ दादा पहचानते थे। उन्होंने बीच में पकड़कर कहा, 'अरे तुम लोग अधीर क्यों होते हो? इन आदमियों के खत्म हो जाने से हमारा-तुम्हारा फैसला निर्भ्रम कहलाएगा। ज़रा तो ठहरो। गुस्से से कहीं ज्ञान हासिल होता है? ठहरो, इन आदमियों से उस सवाल पर मैं खुद निपटारा किए लेता हूँ।'' यह कहकर बड़ दादा आदमियों से मुखातिब करके बोले, ''भाई आदमियो, तुम भी पोली चीज़ों का नीचा मुँह करके रखो जिनमें तुम आग भर कर लाते हो। डरो मत। अब यह बताओ कि वह जंगल क्या है, जिसकी तुम बात किया करते हो? बताओ, वहा कहाँ है?''

आदमियों ने अभय पाकर अपनी बंदूकें नीची कर लीं और कहा, ''यह जंगल ही तो है, जहाँ हम सब हैं।''

उनका इतना कहना था कि चींचीं-कींकीं, सवाल पर सवाल होने लगे।

‘जंगल यहाँ कहाँ है? कहीं नहीं है।’’

‘‘तुम हो। मै हूँ। यह है। वह है। जंगल फिर हो कहाँ सकता है?’’

‘‘तुम झूठे हो।’’

‘‘धोखेबाज़।’’

‘‘स्वार्थी !’’

‘‘खतम करो इनको’’

आदमी यह देखकर डर गए। बंदूकें संभालना चाहते थे कि बड़ दादा ने मामला संभाला और पूछा, ‘‘सुनो आदमियो, तुम झूठे साबित होंगे, तभी तुम्हें मारा जाएगा। क्या यह आग फेंकनी लिए फिरते हो। तुम्हारी बोटी का पता न मिलेगा। और अगर झूठे नहीं हो, तो बताओ जंगल कहाँ है?’’

उन दोनों आदमियों में से प्रमुख ने विस्मय से और भय से कहा, ‘‘हम सब जहाँ हैं, वही तो जंगल है।’’

बबूल ने अपने काँटे खड़े करके कहा, ‘‘बको मत, वह सेमर है, वह सिरस है, साल है, वह घास है। वह हमारे सिंहराज हैं। वह पानी है। वह धरती है। तुम जिनकी छाँह में हो, वह हमारे बड़ दादा हैं। तब तुम्हारा जंगल कहाँ है, दिखाते क्यों नहीं? तुम हमको धोखा नहीं दे सकते।’’

प्रमुख पुरुष ने कहा, ‘‘यह सब कुछ ही जंगल है।’’

इस पर गुस्से से भरे हुए कई वनचरों ने कहा, ‘‘बात से बचो नहीं। ठीक बताओ, नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं है।’’

अब आदमी क्या कहें, परिस्थिति देखकर वे बेचारे जान से निराश होने लगे। एक ने कहा, ‘‘यार, यह क्यों नहीं कह देते कि जंगल नहीं है। देखते नहीं, किन से पाला पड़ा है।’’

दूसरे ने कहा, ‘‘मुझसे तो कहा नहीं जाएगा।’’

‘‘तो क्या मरोगे?’’

‘‘सदा कौन जिया है? इससे इन भोले प्राणियों को भुलावे में कैसे रखूँ?’’

यह कहकर प्रमुख पुरुष ने सबसे कहा, ‘‘भाइयो, जंगल कहीं दूर या बाहर नहीं है। आप

लोग सभी वह हो।

इस पर फिर गोलियों से सवालों की बौछार उन पर पड़ने लगी।

''क्या कहा? मैं जंगल हूँ? तब बबूल कौन है?''

''झूठ! क्या मैं यह मानूँ कि मैं बाँस नहीं जंगल हूँ। मेरा रोम-रोम कहता है, मैं बाँस हूँ।''

''और मैं घास।''

''और मैं शेर।''

''और मैं साँप।''

इस भाँति ऐसा शोर मचा कि उन बेचारे आदिमियों की अकल गुम होने को आ गई। बड़ दादा न हों, तो आदमियों का काम वहाँ तमाम था।

उस समय आदमी और बड़ दादा में कुछ ऐसी धीमी-धीमी बातचीत हुई कि वह कोई सुन नहीं सका। बातचीत के बाद वह पुरुष उस विशाल बड़ के वृक्ष के ऊपर चढ़ता दिखाई दिया। चढ़ते-चढ़ते वह उसकी सबसे ऊपर की फुनगी तक पहुँच गया। वहाँ दो नए-नए पत्तों की जोड़ी खुले आसमान की तरफ मुस्कराती हुई देख रही थी। आदमी ने उन दोनों को बड़े प्रेम से पुचकारा। पुचकारते समय ऐसा मालूम हुआ, जैसे मंत्र रूप में उन्हें कुछ संदेश भी दिया है।

वन के प्राणी यह सब-कुछ स्तब्ध भाव से देख रहे थे। उन्हें कुछ समझ में न आ रहा था।

देखते-देखते पत्तों की वह जोड़ी उद्ग्रीव हुई। मानो उसमें चैतन्य भर आया। उन्होंने अपने आस-पास और नीचे देखा। जाने उन्हें क्या दिखा कि वे काँपने लगे। उनके तन में लालिमा व्याप गई। कुछ क्षण बाद मानो वे एक चमक से चमक आए। जैसे उन्होंने खंड को कुल में देख लिया। देख लिया कि कुल है, खंड कहाँ है।

वह आदमी अब नीचे उतर आया था और अन्य वनचरों के समकक्ष खड़ा था। बड़ दादा ऐसे स्थिर-शाँत थे, मानो योगमग्न हों कि सहसा उनकी समाधि टूटी। वे जागे। मानो उन्हें अपने चरमशीर्ष से, अभ्यंतराभ्यंतर में से, तभी कोई अनुभूति प्राप्त हुई हो।

उस समय सब ओर सप्रश्न मौन व्याप्त था। उसे भंग करते हुए बड़ दादा ने कहा - ''वह है।''

कहकर वह चुप हो गए। साथियों ने दादा को संबोधित करते हुए कहा, ''दादा, दादा!'' दादा ने इतना ही कहा -

"वह है, वह है"

"कहाँ है? कहाँ है?"

"सब कहीं है। सब कहीं है।"

"और हम?"

"हम नहीं, वह है।"

शब्दार्थ

ओछे	– छोटे कद वाले, तुच्छ	वाग्मी	– वाचाल, घमंडी
किलक-किलकर	– कल-कल ध्वनि से	चश्मे	– पानी का सोता
तुमुल	– भयंकर	कोटर	– पेड़ का खोखला भाग
खटका	– शंका	अंतर्भेद	– रहस्य
निर्भ्रम	– भ्रम रहित	उद्ग्रीव	– ऊपर उठना
चैतन्य	– ज्ञान ज्योति	लालिमा	– ज्ञान की चेतना
खंड	– टुकड़े-टुकड़े, भिन्न-भिन्न अंश	कुल	– समग्र, एकत्व
अभ्यंतराभ्यंतर	– अंतःकरण		

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दे :

1. पशु और पेड़-पौधे वन के नाम से भयातुर क्यों होने लगे थे?
2. शिकारी प्रमुख द्वारा अपने साथियों की सलाह न मानने का क्या कारण था ?
3. शिकारी जन पुनः वन में आए तो पशु वनस्पतियाँ भड़क उठीं, क्यों?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

4. 'तत्सत्' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखें।

5. 'तत्सत्' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट करें।

6. 'तत्सत्' कहानी के नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

7. ''जब छोटा था, तब इन्हें देखा था। इन्हें आदमी कहते हैं। इनमें पत्ते नहीं होते, तना ही तना है। देखा वे चलते कैसे हैं? अपने तने की दो शाखों पर ही चलते चले जाते हैं।''

8. ''मालूम होता हैं, हवा मेरे भीतर के रिक्त में वन-वन-वन ही कहती हुई घूमती रहती है। पर ठहरती नहीं हर घड़ी सुनता हूँ, वन है, वन है पर मैं उसे जानता नहीं हूँ। क्या वह किसी को दीखा है?''

9. ''ओ सिंह भाई, तुम बड़े पराक्रमी हो। जानते कहाँ कहाँ छापा मारते हो । एक बात तो बताओ, भाई?''

*****

23. फणीश्वर नाथ रेणु

हिंदी कथा साहित्य में एक अनूठे चित्रमय, भावपूर्ण कथा संसार का निर्माण करने वाले श्री फणीश्वर नाथ रेणु प्रथम श्रेणी के कथाकारों में गिने जाते हैं। इनका जन्म 11 फरवरी, 1921 को पूर्णिया जिले के हिगना ग्राम में हुआ। आपका बचपन वहीं के ग्रामीण परिवेश में बीता। आपकी शिक्षा फार्बिसगंज, विराट-नगर, नेपाल तथा हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में हुई। हिंदी के अन्य जागरूक लेखकों की भाँति रेणु भी स्वाधीनता आन्दोलन से अलग नहीं रह सके और बयालीस की जनक्रान्ति में 3 वर्ष तक नज़रबंद रहे। जेल से छूटने पर रेणु का सम्बन्ध जयप्रकाश नारायण और उनकी समाजवादी पार्टी से हो गया। वे नेपाल में किसानों और मज़दूरों के बीच काम करते रहे। इस दौर में उनका स्वास्थ्य लगातार खराब रहा और वे एक वर्ष तक पटना के अस्पताल में पड़े रहे। रेणु ने अपनी कहानियों के लिए उसी ग्रामाँचल को चुना, जिसकी बोली, भाषा, संगीत, नृत्य तथा नये-पुराने चेहरों की आकृतियाँ उनके मन में बसी हुई थीं। उनके पहले ही उपन्यास 'मैला आँचल' ने धूम मचा दी और वे प्रथम श्रेणी के कथाकारों में गिने जाने लगे। उनका दूसरा उपन्यास 'परती-परिकथा' प्रकाशित हुआ। रेणु ने कहानियाँ कम ही लिखीं, लेकिन जितनी भी लिखीं उसे कोई भुला न सका। 'रस-प्रिया', 'आदिम रात्रि की महक', 'तीसरी कसम', 'पंच लाइट', 'तीर्थोदक', 'ठेस' आदि इनकी अप्रतिम कहानियाँ हैं। रेणु की रोमानी दृष्टि कथा समीक्षकों के लिए आलोचना का विषय बन गई। लेकिन रेणु जी की देन को हिंदी साहित्य के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता।

पाठ परिचय

'**ठेस**' रेणु जी की आँचलिक कलात्मक कहानी है। कहानीकार ने इस कहानी में बताया है कि एक कला के साधक के लिए उसकी कला का महत्व सर्वोपरि होता है। वह किसी भी स्थिति में कला और कलाकार की उपेक्षा नहीं कर सकता। ऊपर से कामचोर, चटोरा तथा अक्कखड़ प्रतीत होने वाला साधारण मनुष्य-सरीखा सिरचन अन्दर से कोमल और एक असाधारण कलाकार है। कलाकार का अपमान वह कला का अपमान समझता है। जहां उसकी कला का सम्मान नहीं वहाँ एक पल भी रुकना पसन्द नहीं करता, किन्तु कला का आदर करने वालों के लिए वह बिना किसी प्रतिदान के भूखा रहकर भी अपनी कलाकृतियों की भेंट कर सकता है।

कहानी एक सच्चे कलाकार की कोमल भावनाओं और कारुणिक जीवन गाथा को मार्मिक ढंग से चित्रित करने में सफल हुई है। कहानी में आँचलिक भाषा (बिहारी) का पुट है। अन्त में कहानीकार ने सिरचन द्वारा स्टेशन पर मानू को शीतलपाटी, चिक और एक जोड़ी आसनी कुश पहुँचाकर कहानी को एक सुखद अन्त दिया है तथा बड़ी ही संवेदनशील स्थिति में कला की पवित्रता और अमूल्यता को प्रतिस्थापित कर दिया है। कहानी का नाम संक्षिप्त व सार्थक है। कलाकार की संवेदनशीलता व कहानी का कथ्य इस नाम की सार्थकता का द्योतक है। रेणु जी ने सिरचन का चरित्र-चित्रण आँचलिक परिवेश व संवादों के माध्यम से उभारा है। खेती-बाड़ी के समय गाँव के किसान सिरचन की गिनती नहीं करते। लोग उसको बेकार ही नहीं, बेगार समझते हैं। इसलिए खेत-खलिहान की मज़दूरी के लिए कोई नहीं बुलाने जाता है सिरचन को। क्या होगा उसको बुलाकर? दूसरे मजदूर खेत पहुँचकर एक-तिहाई काम कर चुकेंगे तब कहीं सिरचन राय हाथ में खुरपी डुलाता हुआ दिखाई पड़ेगा - पगडंडी पर तौल-तौलकर पाँव रखता हुआ, धीरे-धीरे। मुफ्त में मज़दूरी देनी हो, तो और बात है।

ठेस

......आज सिरचन को मुफ्तख़ोर, कामचोर या चटोर कह ले कोई। एक समय था, जबकि उसकी मड़ैया के पास बड़े-बड़े बाबू लोगों की सवारियाँ बंधी रहती थीं। उसे लोग पूछते ही नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे। .... अरे, सिरच भाई। अब तो तुम्हारे ही हाथ में यह कारीगरी रह गई है, सारे इलाके में। एक दिन का समय निकालकर चलो। कल बड़े भैया की चिट्‌ठी आई है शहर से - सिरचन से एक जोड़ा चिक़ बनवाकर भेज दो।

मुझे याद है ....मेरी माँ जब कभी सिरचन को बुलाने के लिए कहती, मैं पहले ही पूछ लेता - भोग क्या-क्या लगेगा?

माँ हँसकर कहती- जा, जा, बेचारा मेरे काम में पूजा-भोग की बात नहीं उठाता कभी।

ब्राह्मण टोली के पंचानन्द चौधरी के छोटे लड़के को एक बार मेरे सामने ही बेपानी कर दिया था, सिरचन ने - तुम्हारी भाभी नाखून से खाँट कर तरकारी परोसती है और इमली का रस डालकर कढ़ी तो हम कहार-कुम्हारों की घरवाली बनाती हैं। तुम्हारी भाभी ने कहाँ सीखा?

इसलिए, सिरचन को बुलाने के पहले मैं माँ से पूछ लेता......।

सिरचन को देखते ही माँ हुलसकर कहती - आओ सिरचन! आज नेनू मथ रही थी, तो तुम्हारी याद आई। घी की (खखोरन) डांडी के साथ चूड़ा तुमको बहुत पसन्द है न.......। और बड़ी बेटी ने ससुराल से संवाद भेजा है, उसकी ननद रूठी हुई है मोथी की शीतलपाटी के लिए।

सिरचन अपनी पनियाई जीभ को सम्हालकर हँसता - घी की सौंधी सुगंध सूंघकर ही आ रहा हूँ, काकी,! नहीं तो इस शादी-ब्याह के मौसम में दम मारने की भी छुट्टी कहाँ मिलती है।

सिरचन जाति का कारीगर है। मैंने घंटो बैठकर काम करने के ढंग को देखा है। एक-एक मोथी और पटेर को हाथ में लेकर बड़े जतन से उसकी कुच्ची बनाता। फिर, कुच्चियों को रंगने से लेकर सुतली सुलझाने में पूरा दिन समाप्त। .... काम करते समय उसकी तन्मयता में ज़रा भी बाधा पड़ी कि गेहुँअन साँप की तरह फुफकार उठाता ...... फिर किसी दूसरे से करवा लीजिए काम। सिरचन मुँहजोर है, कामचोर नहीं।

बिना मज़दूरी के पेट-भर भात काम करने वाला कारीगर। दूध में कोई मिठाई न मिले, कोई बात नहीं, किन्तु बात में ज़रा भी झाल वह नहीं बरदाशत कर सकता।

सिरचन को लोग चटोर भी समझते हैं.....। तली-बघारी हुई तरकारी, दही की कढ़ी, मलाई वाला दूध, इन सबका प्रबन्ध पहले कर लो, जब सिरचन को बुलाओ, दुम हिलाता हुआ हाज़िर हो जाएगा। खाने-पीने में चिकनाई की कमी हुई कि काम की सारी चिकनाई खत्म। काम अधूरा रखकर उठ खड़ा होगा- आज तो अब अधकपाली दर्द से माथा टनटना रहा है। थोड़ा-सा रह गया है, किसी दिन आकर पूरा कर दूँगा। ..... किसी दिन ....माने कभी नहीं।

मोथी घास और पटेर की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक़, सतरंग डोर के मोढ़े, भूसी-चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े-बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी-टोपी तथा इसी तरह के बहुत से काम हैं जिन्हें सिरचन के सिवा गाँव में और कोई नहीं जानता। यह दूसरी बात है कि अब गाँव में ऐसे कामों को बेकाम का काम समझते हैं लोग-बेकाम का काम, जिसकी मज़दूरी में अनाज या पैसे देने की कोई ज़रूरत नहीं। पेट-भर खिला दो, काम पूरा होने पर एकाध पुराना-घुराना कपड़ा देकर विदा करो। वह कुछ भी नहीं बोलेगा।

कुछ भी नहीं बोलेगा, ऐसी बात नहीं। सिरचन को बुलाने वाले जानते हैं, सिरचन बात करने में भी कारीगर है। ....महाजन टोले के भज्जू महाजन की बेटी सिरचन की बात सुनकर तिलमिला उठी थी - ठहरो! मैं माँ से जाकर कहती हूँ। इतनी बड़ी बात।

......बड़ी बात ही है, बिटिया, बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो-दो पटेर की पाटियों का काम सिर्फ खंसारी का सत्तू खिला कर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है बबुनी। सिरचन ने मुस्कराकर जवाब दिया था।

उस बार मेरी सबसे छोटी बहन की विदाई होने वाली थी। पहली बार ससुराल जा रही थी मानू। मानू के दूल्हे ने पहले ही बड़ी भाभी को खत लिखकर चेतावनी दे दी है - मानू के साथ मिठाई की पतीली न आए कोई बात नहीं। एक जोड़ी फैशनेबल चिक़ और पटेर की दो शीतलपाटियों के बिना आएगी मानू तो....। भाभी ने हँसकर कहा बैरंग वापस!, इसलिए, एक सप्ताह पहले से ही सिरचन को बुलाकर काम पर तैनात करवा दिया था माँ ने-देख सिरचन!, इस बार नई धोती दूँगी, असली मोहर छाप वाली धोती। मन लगाकर ऐसे काम करो कि देखने वाले देखकर देखते ही रह जाएँ।

पान जैसी पतली छुरी से बाँस की तीलियों और कमानियों को चिकनाता हुआ सिरचन

अपने काम में लग गया। रंगीन सुतलियों में झब्बे डालकर वह चिक़ बुनने बैठा। डेढ़ हाथ की बिनाई देखकर ही लोग समझ गए कि इस बार एकदम नये फैशन की चीज़ बन रही है, जो पहले कभी नहीं बनी।

मंझली भाभी से नहीं रहा गया, परदे की आड़ से बोली- पहले ऐसा जानती कि मोहर छाप वाली धोती देने से ही अच्छी चीज़ बनती है तो भैया को ख़बर भेज देती।

काम में व्यस्त सिरचन के कानों में बात पड़ गई। बोला–मोहर छाप वाली धोती के साथ रेशमी कुर्ता देने पर भी ऐसी चीज़ नहीं बनती, बहुरिया! मानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है..... मानू दीदी का दूल्हा अफसर आदमी है।

मंझली भाभी का मुँह लटक गया। मेरी चाची ने फुसफुसाकर कहा–किससे बात करती है बहू? मोहर छाप वाली धोती नहीं, मूँगिया लड्डू। बेटी की विदाई के समय रोज़ मिठाई जो खाने को मिलेगी। देखती है न।

दूसरे दिन चिक़ पहली पाँत में सात तारे जगमगा उठे, सात रंग के। सतभैया तारा! सिरचन जब काम में मगन रहता है, तो उसकी जीभ जरा बाहर निकल आती है, ओंठ पर। अपने काम में मगन सिरचन को खाने–पीने की सुधि नहीं रहती। चिक़ में सुतली के फन्दे डालकर उसने पास पड़े सूप पर निगाह डाली – चिउरा और गुड़ का एक सूखा ढेला। मैंने लक्ष्य किया, सिरचन की नाक के पास दो रेखाएँ उभर आईं। मैं दोड़कर माँ के पास गया–माँ, आज सिरचन को कलेवा किसने दिया है, सिर्फ चिउरा और गुड़?

माँ रसोई–घर के अन्दर पकवान आदि बनाने में व्यस्त थी। बोली- मैं अकेली कहाँ–कहाँ क्या–क्या देखूँ? ......अरी मंझली, सिरचन को बुँदिया क्यों नहीं देती?

–बुँदिया मैं नहीं खाता, काकी! सिरचन के मुँह में चिउरा भरा हुआ था। गुड़ का ढेला सूप में एक किनारे पड़ा रहा, अछूता।

माँ की बोली सुनते ही मंझली भाभी की भौंहें तन गईं। मुट्ठी–भर बुँदिया सूप में फेंककर चली गई।

सिरचन ने पानी पीकर कहा – मंझली बहूरानी अपने मैके से आई हुई मिठाई भी इसी तरह हाथ खोलकर बाँटती है क्या?

बस, मंझली भाभी अपने कमरे में बैठकर रोने लगी। चाची ने माँ के पास जाकर कहा

कि ऐसे चटोरे सिरचन को मुँह लगाने से वह सिर पर चढ़ेगा ही। किसी की नैहर-सुसराल की बात क्यों करे वह?

मंझली भाभी मां की दुलारी बहू है। मां तमककर बाहर आई सिरचन-तुम काम करने आये हो, अपना काम करो। बहुओं से बतकुट्ठी करने की क्या ज़रूरत? जिस चीज़ की ज़रूरत हो, मुझसे कहो।

सिरचन का मुँह लाल हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। बाँस में टंगे हुए अधूरे चिक्र में फन्दे डालने लगा।

मानू पान सजाकर बाहर बैठकखाने में भेज रही थी। चुपके से पान एक बीड़ा सिरचन को देती हुई बोली, इधर-उधर देखकर सिरचन दादा काम-काज का घर। पाँच तरह के लोग पाँच किस्म की बात करेंगे। तुम किसी की बात पर कान मत दो।

सिरचन ने मुस्कराकर पान का बीड़ा मुँह में ले लिया। चाची अपने कमरे से निकल रही थी। सिरचन को पान खाते देखकर अवाक् हो गई। सिरचन ने चाची को अपनी ओर अचरज से घूरते देखकर कहा - छोटी चाची, ज़रा अपनी डिबिया का गमकौआ ज़र्दा तो खिलाना। बहुत दिन हुए......।

चाची कई कारणों से जली-भुनी रहती थी, सिरचन से। गुस्सा उतारने का ऐसा मौका फिर नहीं मिल सकता। झनकती हुई बोली - मसखरी करता है? तुम्हारी बढ़ी हुई जीभ में आग लगे। घर में भी पान और गमकौआ ज़र्दा खाते हो? ....चटोर कहीं के। मेरा कलेजा धड़क उठा ....यत्परो नास्ति।

बस, सिरचन की ऊँगलियों में सुतली के फन्दे पड़ गए माने, कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा पान को मुँह में घुलाता रहा। फिर, अचानक उठकर पिछवाड़े पीक थूक आया। अपनी छुरी, हँसिया वगैरह समेट-सम्हाल कर झोले में रखे। टँगी हुई अधूरी चिक्र पर एक निगाह डाली और हनहनाता हुआ आँगन से बाहर निकल गया।

चाची बड़बड़ाई - अरे बाप रे बाप। इत्ती तेज़ी। कोई मुफ़्त में तो काम नहीं करता। आठ रुपए में मोहर छाप वाली धोती आती है। ....इस मुँहझौंसे के न मुँह में लगाम है, न आँख में शील। पैसा खर्च करने पर सैकड़ों चिकें मिलेंगी। बाँतर टोली को औरतें सर पर गट्ठर लेकर गली-गली मारी फिरती हैं।

मानू कुछ नहीं बोली। चुपचाप अधूरी चिक को देखती रही।..... सातों तारे मन्द पड़ गए।

माँ बोली – जाने दे बेटी। जी छोटा मत कर, मानू। मेले से खरीद कर भेज दूँगी।

मानू को याद आई, विवाह में सिरचन के हाथ की शीतलपाटी दी थी माँ ने। ससुराल वालों ने न जाने कितनी बार खोलकर दिखलाया था पटना और कलकत्ता के मेहमानों को। वह उठकर बड़ी भाभी के कमरे में चली गई।

मैं सिरचन को मनाने गया। देखा, एक फटी हुई शीतलपाटी पर लेट-कर वह कुछ सोच रहा है। मुझे देखते ही बोला – बबुआजी। अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं।.... मोहर छाप वाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा? ससुरी खुद मरी, बेटे-बेटियों को भी ले गई अपने साथ। बबुआजी, मेरी घरवाली ज़िन्दा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा। गाँव-भर में तुम्हारी हवेली में मेरी कदर होती थी। ......अब क्या? मैं चुपचाप वापस लौट आया। समझ गया, कलाकार के दिल में ठेस लगी है। वह नहीं आ सकता।

बड़ी भाभी अधूरी चिक में रंगीन छींट का झालर लगाने लगी वह भी बेजा नहीं दिखलाई पड़ता। क्यों मानू?

मानू कुछ नहीं बोली। .... बेचारी। किन्तु मैं चुप नहीं रह सका – चाची और मंझली भाभी की नज़र न लग जाए इसमें भी।

मानू को ससुराल पहुँचाने मैं ही जा रहा था।

स्टेशन पर सामान मिलाते समय देखा, मानू बड़े जतन से अधूरी चिक़ को मोड़कर लिये जा रही है, अपने साथ! मन-ही-मन सिरचन पर गुस्सा हो आया। चाची के सुर में सुर मिलाकर कोसने को जी हुआ।.......... कामचोर, चटोर।

गाड़ी आई। सामान चढ़ाकर मैं दरवाज़ा बन्द कर रहा था कि प्लेटफार्म पर दौड़ते सिरचन पर नज़र पड़ी – बबुआजी। उसने दरवाज़े के पास आकर पुकारा।

– क्या है? मैंने खिड़की से गरदन निकालकर झिड़की के स्वर में कहा। सिरचन ने पीठ पर लदे हुए बोझ को उतारकर मेरी ओर देखा – दौड़ता आया हूँ। ......दरवाज़ा खोलिए। मानू दीदी कहाँ है? एक बार देखूँ !

मैंने दरवाज़ा खोल दिया।

-सिरचन दादा। मानू इतना ही बोल सकी।

खिड़की के पास खड़े होकर सिरचन ने हकलाते हुए कहा – यह मेरी ओर से है। सब चीज़ है दीदी! शीतलपाटी, चिक़ और एक जोड़ी आसनी कुश की। गाड़ी चल पड़ी।

मानू मोहर छाप वाली धोती का दाम निकालकर देने लगी। सिरचन ने जीभ को दाँत से काटकर, दोनों हाथ जोड़ दिए।

मानू फूट–फूटकर रो रही थी। मैं बण्डल को खोलकर देखने लगा – ऐसी कारीगरी, ऐसी बारीकी, रंगीन सुतलियों के फन्दों का ऐसा काम, पहली बार देख रहा था।

शब्दार्थ

मुँह झौंसे – मुँह जले

पाँत – पंक्ति

चटोर – पेटू

बेपानी – बेइज्जत

मोढ़ा – बाँस, बेंत का बना आसन

मूँज – सरकंडों के ऊपरी भाग का छिलका

झाल – ऊँच–नीच

पटेर – जलाशयों में उत्पन्न होने वाला सरकंडे की जाति का पौधा जिसके पत्ते चटाई एवं टोकरी आदि बनाने के काम आते हैं।

अधकपाली – आधा सिर

मोथी – एक प्रकार की घास

मुँह लाल होना – क्रोधित होना

शील – शर्म

हुलसकर – खुश होकर

कलेवा – सुबह का जलपान

गेहुँअन साँप – मटमैले रंग का फनदार एक अत्यंत ज़हरीला साँप

चिक़ – बाँस की तीलियों आदि का बुना हुआ झीना परदा

बघारी – तड़की हुई

झब्बे – कपड़ों, गहनों आदि में लगाए जाने वाले फुँदने

शीतलपाटी – बेंत की जाति के एक पेड़ के छिलके से निर्मित एक प्रकार की पतली और चिकनी चटाई।

चिउरा – उबालकर और कूटकर सुखाया गया चावल, चिड़वा

सत्तू – भुने हुए जौ, चने आदि का आटा

नैहर – पीहर, मायका

खंसारी – घी का छान (बचा हुआ पदार्थ)

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'ठेस' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर अपने विचार प्रकट करें।
2. 'ठेस' कहानी के आधार पर सिरचन का चरित्र चित्रण करें।
3. सिरचन किस बात से नाराज़ होकर काम छोड़कर चला जाता है?
4. लेखक द्वारा मनाने पर भी न आने वाला सिरचन स्वयं ही मानू के लिए स्टेशन पर शीतलपाटी, चिक़ और एक जोड़ी आसनी कुश को क्यों पहुँचाता है? स्पष्ट करें?

(ख) लगभग 150 शब्दों मे उत्तर दें :

5. 'ठेस' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखो।
6. 'ठेस' कहानी कलाकार की संवेदनशीलता की कहानी है, स्पष्ट करें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

7. ''बड़ी बात ही है बिटिया, बड़े लोगों की बस बात ही बड़ी होती है। नहीं तो दो दो पटेर की पाटियों का काम सिर्फ खंसारी का सत्तू खिलाकर कोई करवाए भला? यह तुम्हारी माँ ही कर सकती है।''
8. ''बबुआ जी। अब नहीं। कान पकड़ता हूँ, अब नहीं। मोहर छाप वाली धोती लेकर क्या करूँगा? कौन पहनेगा? ससुरी खुद मरी, बेटे बेटियों को भी ले गई अपने साथ? बबुआ जी मेरी घर वाली ज़िन्दा रहती तो मैं ऐसी दुर्दशा भोगता? यह शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा।''
9. खिड़की के पास खड़े होकर सिरचन ने हकलाते हुए कहा–यह मेरी ओर से है। सब चीज़ है दीदी। शीतलपाटी, चिक़ और एक जोड़ी आसनी कुश की। गाड़ी चल पड़ी।

*****

24. डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता

डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता का जन्म सन् 1930 में रावलपिंडी (अब पकिस्तान) में हुआ। आपने इलाहालबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिंदी) किया और पंजाब विश्वविद्यालय से पी. एच. डी की उपाधि प्राप्त की। आपके शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य' पर पंजाब हिंदी साहित्य अकादमी, भाषा विभाग, पंजाब आदि द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये हैं। आपने लगभग 40 वर्षों तक राजकीय महाविद्यालय लुधियाना और पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में अध्यापन और मार्गदर्शन का कार्य किया।

आप एक ऐसे सृजनधर्मी कहानीकार हैं जिन्होंने कहानियों में अपने परिवेश से चुभने वाली कुछ अनुभूतियों को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है कि पाठक उनके साथ सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उन पर सोचने के लिए विवश हो उठता है। 'शिमले की क्रीम', 'पुरानी मिट्टी नये ढाँचे', 'मिट्टी पर नंगे पाँव', 'खरोच', 'सिद्धार्थ से पूछूँगा', 'मेरी श्रेष्ठ कहानियाँ' आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। आपकी सभी कहानियों में अपनी धरती, अपने घर, अपने मूल, अपने बच्चों, अपने वर्तमान और अपने से आगे के भविष्य से सम्बन्धित उद्विग्नताओं, अकुलाहटों, दायित्वपूर्ण चिन्ताओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। आपके कहानी संसार के बारे में किसी ने सच ही कहा है कि ये रात की वर्षा से निखरी धुली गर्मियों की सुबह-सी स्वच्छता और प्रकाश लेकर हिंदी में आई हैं।

डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने न केवल कहानियों के द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है बल्कि नाटक और रंगमच के क्षेत्र में योगदान सराहनीय है। चंडीगढ़ में 'अभिनेत' नाट्य संस्था के आप संस्थापक हैं। इस संस्था ने गत 25 वर्षों से लगभग 25 नाटकों का कुशल मंचन किया है। इनमें जगदीश चन्द्र माथुर का 'कोणार्क', मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे', कमलेश्वर का 'अधूरी आवाज़', धर्मवीर भारती का 'अन्धायुग', कालिदास का 'शकुन्तला' आदि प्रसिद्ध हैं। इन सभी नाटकों का कुशल निर्देशन आपके द्वारा किया गया है। रंगमंच के प्रति सजगता, सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति और कुछ नया कहने की चाह आपको कुशल नाटककारों की श्रेणी में स्थान दिलाती है।

इनकी भाषा शैली सरल, सहज व सटीक है और मर्म को स्पर्श करने वाली है शब्दों का चयन सहज ही अव्यक्त को व्यक्त कर देता है।

पाठ परिचय

बाह्य आक्रमणों के कारण मध्यकालीन समाज में लड़की के पालन-पोषण और सेवा-सुरक्षा में आने वाली कठिनाइयों के फलस्वरूप भारतीय जनमानस में लड़की के जन्म को एक अभिशाप सा माना जाता रहा है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा आदि सभी इसी मानसिकता से जुड़ी हुई समस्याएँ हैं। अब ज़माना काफी बदल गया है। नई सोच नया रूप ले रही है, किन्तु सदियों से चली आ रही रूढ़ियाँ बदलने में अभी काफी समय लगेगा। **'उपेक्षिता'** कहानी इसी तथ्य को उजागर करती है। चाहे लड़की को जन्म देने वाली माँ स्वयं किसी की लड़की है और उसे लड़की और लड़के में कोई भेद नहीं दिखता फिर भी समाज, दोस्त, मित्र, सगे-संबंधी सभी के गले में लड़की के जन्म की बात नहीं उतरती। सभी के मन पर एक बोझ है कि एक मुसीबत ही आ गई है। इस कठिन समय में हर कोई लेखक को सान्त्वना देना चाहता है और अपनी बात कहकर अपना फर्ज़ पूरा कर देता है।

डॉ. वीरेन्द्र मेहदीरत्ता ने सरल और सरस भाषा में इस सामाजिक मनोभाव को प्रस्तुत किया है। कुछ न कह कर भी लेखक ने वर्तमान समाज को बहुत कुछ कह दिया है। पंजाबी लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग है - शैली अपना पूरा प्रभाव छोड़ती है।

उपेक्षिता

चिड़िया के बच्चे की तरह खुला मुँह, मूँदी हुई आँखें और बिना मतलब के हिलते-डुलते पाँव। मेरी बेटी जिसकी उमर कुछ ही मिनटों की होगी, नर्स की गोद में थी। नन्हा गोल चेहरा, सुकोमल गाल, गुलाबी नर्म त्वचा और रेशमी बाल। अनायास मुझे कश्मीर में देखे कमल के फूलों की याद आ गयी – उनकी ताज़गी, उनकी महक, उनका आकर्षण। मैं मन-ही-मन सोचने लगा। सम्भवत: भगवान ने इसके कानों में जीवन की अमरता का रहस्य फूँककर ही, लड़की के रूप में जन्म दिया है। अपनी बच्ची के भोले और निर्विकार चेहरे की ओर देखकर वर्डज़्वर्थ की वे पंक्तियाँ याद आ गयीं जिनमें कवि कहता है : 'बच्चे भगवान के निकट होते हैं।' निकट क्या, मैं तो सोचता हूँ कि वे भगवान का ही रूप ही होते हैं।

भगवान का रूप और उसके लिए इतनी उपेक्षा? मुझे याद आया, जब मैं अस्पताल में लेबर-रूम के सामने बेचैनी की हालत में बरामदे के चक्कर काट रहा था, तो मन में अनेक विचार उठ रहे थे, बच्चे के जन्म के बाद माँ का तो दूसरा ही जन्म होता है, और खासकर पहले बच्चे के समय तो बहुत ही तकलीफ़ होती है। इस समय तो मुझे कमला की ही फिक्र थी। लड़का हो या लड़की, इस बात की तनिक भी चिन्ता न थी। उसी समय नर्स आयी, "बेबी के कपड़े कहाँ हैं?" लड़की के जन्म की खबर उसने बताने योग्य ही न समझी थी।

बच्ची का सामान नर्स को देते समय पास खड़ी एक बुढ़िया ने देख लिया और अपनी साथ वाली औरत से बोली, "कपड़े-लत्ते तो बेचारों ने बहुत अच्छे ही बनाये हैं, तैयारी तो लड़के की थी, पर हुई लड़की।' और अफ़सोस करते हुए लहज़े में बोली, "च्च-च्च।"

यह था मेरी बेटी का स्वागत।

"माँ का क्या हाल है?"

"बस, ठीक ही समझिए", नर्स संक्षिप्त-सा उत्तर देकर लेबर-रूम की ओर चली गयी।

"लड़की को जन्म देना आसान है, बेटा?" और एक ठंडी साँस लेकर वह बोली, "लड़कियाँ तो पैदा होने के वक्त से ही माँ का खून चूसने लगती हैं। जान बच जाये तो समझो

बड़ी बात है।'' एक-एक शब्द पर वह इतना ज़ोर दे रही थीं मानो उसका अनुभव ही साकार होकर बोल रहा हो।

कहते हैं कि लड़की को जन्म देते समय माँ को ज्यादा तकलीफ़ होती है। भला यह कैसे हो सकता है? मेरा विचार है कि सामाजिक रूढ़िवादिता और अंधविश्वास मनोवैज्ञानिक रूप में प्रकट हुए हैं। इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं। माँ जो स्वयं भी किसी की बेटी है, उसे अपनी ही बेटी को जन्म देते समय ज्यादा तकलीफ़ होती है और पुत्र-रत्न उसके लिए फूल-सा हल्का है, उसे जन्म देते समय वह अपनी तकलीफ़ को भी भूल जाती है। कितना अज़ीब है।

क्या कमला भी इसी प्रकार सोचती होगी? नहीं, मेरा विश्वास है कि वह इस तरह नहीं सोचती। वह स्वयं भी तो अपने माँ-बाप की सबसे बड़ी बेटी है। कमला के पिता जी ने आते ही कहा था, ''बड़े खुशकिस्मत हो, जो तुम्हारी पहली सन्तान बेटी है। लड़कियाँ ही माँ-बाप को सुख देने वाली होती हैं। कमला ने जितना सुख हमें दिया है, बस मैं ही जानता हूँ।'' और साथ ही पंजाबी की एक लोकोक्ति सुना दी - ''जो सुख लोड़ें अप्पना, ते रख प्लेठी धी'' (यदि तू अपना सुख चाहता है तो तेरी पहली सन्तान लड़की हो)।

मेरी अम्मा ने कमला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, ''ओ तींवीं सुलछ्छनी, जेड़ी जम्मे पहली लछ्छमी।''

''कोई बात नहीं, घर में लक्ष्मी आयी है।'' पिता जी ने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा था।

लक्ष्मी के आने की बात तो समझ में आ गयी। पर 'पर कोई बात नहीं' का अर्थ समझ में नहीं आया। क्या वह यह कहकर मुझे तसल्ली दे रहे थे या अपने मन को समझा रहे थे?

पर अब एक समस्या आयी, मित्र-सम्बन्धियों ने तार द्वारा सूचना देने को कह रखा था। तार भेजने लगा तो पिता जी ने कहा, ''पागल हुआ है, लड़की होने पर भी कोई तार देता है?'' धीरे से बोले, ''पोस्टकार्ड भेज दो, पोस्टकार्ड!'' तो अब समझ में आया कि तार देने की बात कह उन्होंने किसी चतुराई से, मूक रूप से लड़के होने की शुभकामनाएँ की थीं।

चंडीगड़ में भी जैसे-जैसे पता चला, लोग-बाग़ मिलने आने लगे। मिस्टर और मिसेज चोपड़ा मेरे परिचितों में से हैं। चोपड़ा-दंपत्ति अपने प्रत्येक वाक़िफ की खुशी-ग़मी में ज़रूर शामिल होते हैं। मिसेज़ चोपड़ा बड़ी व्यवहार कुशल औरत समझी जाती है। मिस्टर चोपड़ा ठीक इससे उलट हैं। बहुत कम बोलते हैं और जब कभी बोलते भी हैं, तो ठीक मौके पर

बे-मौके की बात कर देना, इनकी विशेषता। रास्ते में मिसेज़ चोपड़ा किसी से बातें करने लगीं, सो मिस्टर चोपड़ा अकेले ही मुस्कराते हुए कमरे में दाखिल हुए। चुपचाप सशोपंजी हालत में खड़े हो गये। उनकी मुस्कान चुभ रही थी। मैं भी चुप था। चुप्पी। चुप्पी। मानो मातम मना रहे हों। एकाएक मिस्टर चोपड़ा को जैसे कुछ सूझ गया हो, सो बोले, ''एक ही तो होना था, लड़का या लड़की।'' चोपड़ा साहिब की आवाज़ धीमी और ढीली थी।

ठीक उसी समय मिसेज़ चोपड़ा आ गयीं, मेरे चेहरे के तनाव को देख कर स्थिति भाँप गयीं। चतुराई से बात पलट कर बोलीं, ''आजकल तो लड़के या लड़की में फर्क कहाँ रहा है?'' कमला के पास जाकर और मुस्कराते हुए बोलीं, ''लड़का हो तो भी अच्छा है, लड़की हो तो बुरा क्या है? लड़कियाँ भी पढ़-लिखकर बड़ी से बड़ी नौकरियाँ पा सकती हैं।''

मेरे चेहरे का तनाव कुछ पिघला। मिसेज़ चोपड़ा कहती गयीं, ''सब अपनी किस्मत लेकर आते हैं।'' और उसके बाद अनेक उदाहरण कि कैसे रामजीदास के घर जब लड़की का जन्म हुआ तो उसकी डर्बी की लाटरी आ गयी। दीनदयाल को भी लड़की के जन्म होते ही पाँच लाख का फायदा। ''मैं तो कहती हूँ लड़की हो या लड़का, पर हो किस्मत वाला !'' और इसके बाद भी लगभग आधा घंटा इसी प्रकार की कहानियाँ सुनाती रही। सहानुभूति जता, दिलासा दे और अपना कर्त्तव्य निभाकर बड़े सन्तोष के साथ मिस्टर और मिसेज़ चोपड़ा चले गये।

दूसरे दिन की बात है कि घर और अस्पताल के बीच अनेक चक्कर लगाने के बाद मैं थका-हारा बैठा था कि मिस्टर सहगल आये। आते ही बोले, ''क्या बात हो गयी, लड़की की चिन्ता लग गयी क्या? आज के जमाने में तुम्हारे जैसे लोग भी चिन्ता करने लगे तो बन गयी बात!''

मेरे कुछ कहने से पहले मिसेज़ सहगल बोली, ''भला इसमें चिन्ता की क्या बात है, हमारी भी तो दो लड़कियाँ हैं, पर सहगल साहब ने तो कभी सोचा भी नहीं।''

''और अपने थापर ने तो लड़की के जन्म पर लड्डू भी खिलाये थे।'' इधर स्थिति कुछ ऐसी थी कि लड़की होने का मुझे तनिक भी अफ़सोस न था, किन्तु उस समय लड्डू खिलाने के लिए मैं भी तैयार न था। सो चुप ही रहना भला समझा।

''खामोश हो गये, अरे भाई? तुमसे तो लड्डू नहीं माँग रहे। हम तो बस यही कहते हैं, घबराने की इसमें कोई बात नहीं। टेक लाइफ एज़ इट कम्ज़।''

उसी समय गुप्ता साहब आ गये। उनकी पत्नी भी साथ थीं। कमरे में दाखिल होते ही बोले, ''माना लड़की हुई है, पर खबर तो दी होती।'' आँखें नचाकर ज़रा धीमी आवाज़ में

बोले, ''धीरज़ रखो, भगवान ने चाहा तो एक छोड़ अनेक लड़के भी हो जायेंगे।'' पति-पत्नी ठहाका मार ज़ोर से हँस पड़े।

''अपने रामलाल को नहीं देखा, चार लड़कियों के बाद लड़का हुआ है।'' मिस्टर गुप्ता अपनी सहानुभूति का वांछित प्रभाव मेरी आँखों में झाँक रहे थे।

''आप बड़े अज़ीब हैं।'' मिसेज़ गुप्ता कह रही थी।

''इसमें अज़ीब होने की क्या बात है, मैं तो इसे समझा रहा हूँ कि एक लड़की होने से घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। उनकी ओर देखो जिन की सात-सात लड़कियाँ हैं।''

कमला के चेहरे पर सकरुण मुस्कान फैल गयी। मैं भी क्या कहता, सो चुप था। मिसेज़ गुप्ता अपनी झुँझलाहट को दूर करने के लिए बेटी के पास गयीं। उसे देखकर कहने लगीं, ''आपकी तो बेटी ही बड़ी स्वीट है।'' दूसरे शब्दों में, आपको इसकी शादी करने में दिक्कत न होगी, घबराने की ज़रूरत नहीं।

बेटी की तारीफ सुनकर कमला मुस्करा दी। मिस्टर-मिसेज़ गुप्ता और सहगल थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके चले गये।

चंडीगड़ से बाहर वाले मित्रों और सम्बन्धियों को जब पता चला कि मेरे घर लड़की हुई है, तो प्रत्येक ने खत ज़रूर लिखा, यद्यापि बधाई नहीं। जिस किसी ने बधाई दी भी, तो बड़ी चतुराई के साथ। बहुत से पत्र इस प्रकार शुरु होते हैं -

''हुआ क्या......!'', ''घबराते क्यों हो.......?'', ''चिन्ता मत करो......'', ''कोई बात नहीं.......।'' और कुछ ने लिखा है, ''बाप बनने की मुबारिक !'' लड़की होने की बात कितनी खूबी से बचा गये।

''टँग गये, दहेज की तैयारी करो।''

''जो भगवान की इच्छा थी आखिर वही होना था।''

भगवान जी की इच्छा थी वही तो हो गया, पर मेरे मित्रों और सगे-सम्बन्धियों की क्या इच्छा है, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि मेरी मौसी जी ने तो हद ही कर दी। बेटी के जन्म के बाद पहली बार उन्हें मिलने के लिए गये। बेटी को देखते ही सिर को दाएँ बाएँ हिलाकर और अफ़सोस से दबी आवाज़ में और बड़ी व्यवहार कुशल और अभ्यस्त ढंग से आँखों में आँसू लाकर बोली, ''तेरी क्या ज़रूरत थी, आगे क्या कम थीं, वे ही नहीं संभलती और तू आ गयी

!'' उन्होंने बेटी को उठाने के लिए हाथ उठाया।

''बेजी, शायद आप से संभलेगी नहीं।'' कमला ने बेटी का मुँह दूसरी तरफ कर लिया। कमला की आँखों में निश्चय था।

उसने अपनी बेटी को छाती से लगा लिया। जैसे कह रही हो, ''मेरे लिए यह बेटी बेटों से भी बढ़कर है।''

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. कमला का चरित्र चित्रण करें।
2. लेखक के मित्रों ने लड़की पैदा होने पर अपने उद्‌गार कैसे पेश किए?
3. कमला के माँ-बाप ने लड़की पैदा होने पर उसे कैसे सान्त्वना दी?

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

4. 'उपेक्षिता' कहानी का सार अपने शब्दों में लिखो।
5. 'परिवार में लड़की का पैदा होना ठीक क्यों नहीं समझा जाता', 'उपेक्षिता' कहानी के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि करें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

6. ''कपड़े-लत्ते तो बेचारों ने बहुत अच्छें ही बनाये हैं, तैयारी तो लड़के की थी, पर हुई लड़की।''
7. ''लड़कियाँ तो पैदा होने के वक्त से ही माँ का खून चूसने लगती है। जान बच जाये तो समझो बड़ी बात है।''
8. ''ओ तींवी सुलछनी जेड़ी जम्मे पहली लछ्छमी।''
9. ''मैं तो कहती हूँ लड़की हो या लड़का, पर हो किस्मत वाला।''

*****

एकांकी भाग

25. उदय शंकर भट्ट

श्री उदय शंकर भट्ट बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हुए हैं। आपने उपन्यास, कविता, नाटक व एकांकी लिखे। भट्ट जी का जन्म बुलन्दशहर में सन् 1897 में हुआ। किन्तु साहित्य साधना अधिकतर लाहौर (पंजाब) में हुई। आपकी आरम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई। अजमेर, बड़ौदा, लाहौर तथा कलकत्ता आपके शिक्षा स्थान हैं। सनातन धर्म संस्कृत कॉलेज लाहौर में आप काफी समय तक पढ़ाते रहे। पहले आपकी प्रवृति नाटक लिखने की ओर थी। बाद में आपने एकांकी लिखे। आपकी गणना हिंदी के उत्कृष्ट एकांकीकारों में है। आपकी एकांकी कला में व्यंग्यात्मकता एवं मार्मिकता की प्रधानता रहती है। भाव, कार्य व्यापार आदि की दृष्टि से नाटकों में विशेष सन्तुलन दृष्टिगोचर होता है। हिंदी के सर्वप्रथम दुःखान्त नाटककारों में भी आपकी गणना की जाती है आपकी रचनाएँ इस प्रकार है –

उपन्यास : लोक परलोक, वह जो मैंने देखा, शेष-अशेष, सागर, लहरें और मनुष्य और एक नीड़ दो पंछी।

कविता : तक्षशिला, राका, मानसी, विसर्जन, अमृत और विष, युगदीप, यथार्थ और कल्पना, विजय पथ।

नाटक : विक्रमादित्य, अम्बा, सागर विजय, कमला, मुक्तिपथ, कालिदास, अन्तहीन अन्त, शक-विजय, विश्वामित्र और दो भावनाट्य, एकला चलो रे, पार्वती, क्रान्तिकारी।

एकांकी : पर्दे के पीछे, आदिम युग, समस्या का अन्त, अभिनव एकांकी, स्त्री का हृदय, धूमशिखा, नया समाज, अस्तोदय, जवानी तथाछह एकांकी, अंधकार और प्रकाश।

इस प्रकार उदय शंकर भट्ट कवि और लेखक दोनों ही रूपों में प्रख्यात रहे। परन्तु भट्ट जी के पूरे नाटकों की अपेक्षा उनके एकांकी रंगमंच की दृष्टि से अधिक सफल हैं। उनके सामाजिक प्रहसनों का तो कई बार सफलतापूर्वक अभिनय हो चुका है। बीमार का इलाज, दस हज़ार, वापसी, गिरती दीवारें, बाबू जी आदि एकांकी आपकी पैनी दृष्टि के परिचायक हैं।

हिंदी साहित्य का यह देदीप्यमान नक्षत्र सन् 1964 में साहित्य जगत से बिछुड़ हो गया।

पाठ परिचय

'वापसी' एकांकी प्रमुख एकांकीकार श्री उदय शंकर भट्ट का एक सामाजिक एकांकी है, जिसमें लेखक ने रिश्ते नातों के खोखलेपन पर एक भरपूर व्यंग्य किया है। मानव स्वार्थी स्वभाव का है– लोभ का दामन थामे हुए पारिवारिक सम्बन्धों के महत्व को अनदेखा करके सगे सम्बन्धी अपने रिश्तेदार की दौलत हड़पने के लिए अनेक तरह के स्वाँग करता है। यह इस एकांकी में भली भान्ति दिखाया गया है। घर का एक व्यक्ति मृत्यु शय्या पर पड़ा है और उसके उपचार के लिए डॉक्टर लाने की बजाए हरेक की आँखें उसके कैश बॉक्स पर टिकी हैं। कैश बॉक्स की चाबी हथियाने के लिए वह एक दूसरे से गुत्थम गुत्था हो जाते हैं। गाली गलौच करते हैं सौदेबाज़ी पर उतर आते हैं – पाठक उनकी इस नौटंकी पर हँसता भी है और दिल ही दिल में उन्हें कोसता भी है। बाद में राय साहिब जो कि मरने का नाटक कर रहे होते हैं, उठ बैठते हैं और वापिस बर्मा (बर्मा देश का अब मयनामार नाम से जाना जाता है। जाने का फैसला करते हैं। वास्तव में राय साहब का अपने देश और अपने सगे सम्बन्धियों को छोड़कर जाना उनकी विवशता है। लेखक कहना चाहता है कि घर, परिवार, नाते, रिश्ते और सम्बन्ध वहीं परिपक्व रूप धारण करते हैं, जहाँ प्रेम नि:स्वार्थ हो और सम्बन्ध का आधार अपनत्व की भावना हो। एकांकी का शीर्षक 'वापसी' संक्षिप्त व सार्थक है। राय साहब की बर्मा वापसी से एकांकी समाप्त हो जाता है और वापसी का कारण है स्वार्थ के आधार पर सम्बन्धों का टिका होना। एकांकी की भाषा पात्रानुकूल है – सरल है। मानवीय मूल्यों के गिरते स्वरूप को दिखाने में लेखक पूर्णत: सफल रहा है।

वापसी

(पात्र)

राय साहब	:	एकांकी का मुख्य पात्र राय साहब राम प्रसन्न जो कि बर्मा सो वापिस आए हैं।
दीना नाथ	:	राय साहब का भाई
अंबिका	:	राय साहब का सम्बन्धी
कृपानाथ	:	राय साहब का साला
सिद्धेश्वर	:	पड़ौसी
वंशीधर	:	दीनानाथ का साला
सरोजिनी	:	राय साहब की साली
चन्द्रिका	:	राय साहब की लड़की
भगीरथी	:	अम्बिका की स्त्री

राय साहब राम प्रसन्न लगभग पैंतीस वर्ष तक रंगून के कमिश्नर के दफ्तर में हैडक्लर्क रहे। रहने वाले वैसे युक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के हैं। बचपन में बर्मा चले गए थे। वहाँ नौकरी करते उन्होंने राय साहब का खिताब पाया और धन कमाया। दो मकान भी खरीद लिये। बर्मा में ही उनकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया। इसके बाद उन्होंने अपनी बड़ी साली को, जो विधवा थी और अपने छोटे भाई के साथ गरीबी में गुजर-बसर कर रही थी, अपने पास बुला लिया। वह घर की स्वामिनी बन गई तथा राम प्रसन्न की छोटी लड़की का पालन-पोषण करने लगी। जब राय साहब रिटायर हुए तो इनकी इच्छा देश वापिस आने की हुई। निदान राय साहब बहुत-सा धन लेकर देश लौट आए। घर उनका कोई था नहीं, इसलिए वह अपने एक सम्बन्धी के यहाँ ठहरे। दिन-रात शराब मस्त रहने के कारण उनका स्वास्थ्य गिर गया। नाटक में उसी समय का दृश्य है।

[एक सजा हुआ कमरा। पूर्व-पश्चिम की ओर दो कमरे। दक्षिण की ओर दो अलमारियाँ। पूर्व की तरफ अलमारी के पास पलंग पर राय साहब पड़े हैं। उस अलमारी में कैश-बॉक्स, शराब की बोतलें और दवा की शीशियाँ रखी हैं। नीचे फर्श पर दो बड़े सन्दूक रखे हैं। पलंग के पास दो कुर्सियाँ, बाकी भाग में एक बड़ी दरी और उस पर कालीन बिछा हुआ है। दूसरी तरफ अलमारी में कुछ किताबें हैं। शाम का समय है। कमरे में अस्त होते हुए सूर्य का धुँधला प्रकाश नज़र आ रहा है। पास के मकान से गाने की आवाज़ आ रही है। राय साहब बेहोश पड़े दिखाई देते हैं - आँखें बन्द, शरीर निश्चेष्ट। साँस चल रही है। चन्द्रिका पिता के पैरों की ओर बैठी है, सरोजिनी धीरे-धीरे आती है।]

चन्द्रिका : (सरोजिनी से) अम्मा, बापू कैसे पड़े हैं? देखो तो चार-पाँच घंटे हो गए।

सरोजिनी : (घबराहट से) न जाने इन्हें क्या हो गया, बेटी। (मुँह में पानी डालती है।)

चन्द्रिका : (सरोजिनी से लिपटकर) बापू को क्या हो रहा है, अम्मा?

सरोजिनी : हमारा भाग्य फूट रहा है, बेटी, और क्या। (फिर राय साहब की खाट के पास खड़ी हो जाती है।)

(पश्चिम के कमरे में भगीरथी आती है और फर्श पर बैठती है।)

भगीरथी : कैसी तबीयत है इनकी?

सरोजिनी : वैसी ही है। कोई सुधार होता दिखाई तो नहीं देता। मैं ही अभागिन हूँ, भगीरथी। नहीं तो क्यों इन्हें कष्ट होता? अभी उम्र ही क्या है ?

भगीरथी : शराब ने चूस डाला। तुमने मना नहीं किया शराब पीने को?

सरोजिनी : किया क्यों नहीं? कई बार तो मना किया, समझाया, पैरों पड़ी, मिन्नत खुशामद की, पर कोई माने तब न? जो लत एक बार लग जाती है वह छूटती थोड़े ही है। मित्रों ने बर्मा में पिला-पिलाकर इन्हें बीमारी की डगर पर डाल दिया। रुपया इनका खर्च होता था, पीते सब थे।

भगीरथी : और अब तक पीते हैं। हर समय आँखें लाल रहती हैं। मैने तो समझा शायद इनकी आँखें ऐसी ही हों। पर एक दिन बोतल खोलते देखा, तब समझ में आया ये शराब पीते हैं।

चन्द्रिका : एक-दो बार तो अम्मा ने भी पी थी।

सरोजिनी : दूर, पगली, झूठा नाम लगाती है? तूने कब देखा री?

(आँखे ऐसे तरेरती है, जैसे खा ही जायेगी)

चन्द्रिका : (डरकर) मैं कब कहती हूँ। शायद पी होगी। मैं यही तो कह रही हूँ।

सरोजिनी : नहीं, मैंने नही पी। भला तुम्ही सोचो, क्या मैं ऐसा काम कर सकती हूँ।

भगीरथी : (बात बदलकर) और दवा के तौर एक एकाध बार पी भी ली हो तो क्या बुराई है? बर्मा में तो कोई परहेज़ नहीं है।

सरोजिनी : बर्मी लोग किसी बात का परहेज़ नहीं करते-खाने-पीने का भी नहीं और जात-पात का तो कोई झगड़ा ही नहीं है। वे लोग तो बौद्ध हैं, कुछ मुसलमान हैं। हिन्दू तो बहुत कम हैं।

चन्द्रिका : अम्मा, बापू को कोई दवा दो। आज तो तुमने डॉक्टर को भी नहीं बुलाया।

सरोजिनी : देश बड़ा सुन्दर हैं। औरतें सब काम करती हैं। दुकान, ऑफिस, सब जगह काम करती हैं।

भगीरथी : क्या दोनों मकान बेच दिए?

सरोजिनी : एक बेचा है। (जेब टटोलकर) चंदी, चाबी का गुच्छा कहाँ हैं?

(चन्द्रिका चुप रहकर ध्यान से पिता की ओर देखती रहती है। सरोजनी उठकर इधर-उधर चाबी ढूँढती है)

भगीरथी : यहीं होगा। कोई आया भी तो नहीं है। जायेगा कहाँ? भला कौन-सा गुच्छा?

सरोजिनी : (परेशान सी) वह छोटे सन्दूक का गुच्छा था। आज सवेरे कृपा नाथ ने लिया था। उसने दिया नहीं होगा अरे कृपा, कृपा! (शराब के नशे में चूर कृपा नाथ आता है) तूने फिर पी ली रे?

कृपा नाथ : (लड़खड़ाता हुआ बहन के मुँह के पास आँखे गड़ाकर) क...या..क...या..

कहती हो? व्... भ्.... ल्.... मैं क्यों पीता? (भगीरथी उसे देखकर भयभीत हो जाती हैं)

सरोजिनी : कुलच्छने, कोई देखेगा तो क्या कहेगा? जीजा मरने को पड़ा है और तुझे शराब पीने की सूझी है? यह भी न हुआ कि जाकर डॉक्टर को ही बुला लाता। देख तो हालत कैसी बिगड़ रही है।

कृपा नाथ : (भरी हुई आँखों से चन्द्रिका के पास जाकर) तेरा यह कौन है? बोल। (उसकी आँखों में उँगली देता हुआ) बोल बोलेगी कि नहीं?

चन्द्रिका : अम्मा, देख तो मामा क्या कर रहे हैं।

सरोजिनी : कृपा, तू कितना मूर्ख है। क्या हया-शरम भी बेच दी है?

भगीरथी : ऐसा भी क्या, जीजा तो मरने को पड़ा है और इसे शराब की सूझी है।

(सरोजिनी कृपा नाथ को घसीटकर पश्चिम की तरफ के कमरे में बन्द कर देती है। वह उस कमरे में ही बकने लगता है। भगीरथी चली जाती है। कृपा नाथ को बकते देखकर सरोजिनी दरवाज़ा खोल देती है। वह फिर आ जाता है।)

सरोजिनी : (उसकी छाती पर दुहत्तड़ मारकर) तुझे इस समय शराब की सूझी है? वह भगीरथी देख गई है। अभी दफ्तर से अम्बिका आता होगा, देखेगा तो क्या कहेगा? और सुन, वह चाबी का गुच्छा कहाँ है?

(कृपा नाथ शराब में बेसुध होकर वहीं फर्श पर लेट जाता है। सरोजिनी उसकी जेब टटोलती है, पर गुच्छा नहीं मिलता। ढूँढ़ती रहती है। फिर वह दूसरे कमरे से दो शराब की बातलें लाकर राय साहब के पास की अलमारी में पीछे तरफ रख देती है। इस समय सिद्धेश्वर का प्रवेश होता है।)

सिद्धेश्वर : कैसी तबीयत है राय साहब की?

सरोजिनी : बिल्कुल गुम-सुम हो गए हैं। सवेरे डॉक्टर को बुलाने कृपा को भेजा था। पर वह उस समय मिला नहीं।

सिद्धेश्वर : तो दुबारा भेजना चाहिए था। यह क्या, कृपा नाथ को क्या हो गया?

सरोजिनी : ऐसे ही तबीयत खराब हो गई, सो गया है।

सिद्धेश्वर : यह तो (ध्यान से देखकर) मालूम होता है जैसे शराब पिये हुए हो। ठहरिये मैं डॉक्टर को लाता हूँ।

सरोजिनी : अब क्या होगा डॉक्टर को लाकर? इनकी हालत तो अच्छी नहीं है। रात कट जाय तो गनीमत समझे। बत्तीस रुपये फीस लेगा। ख़ैर फीस की तो कोई बात नहीं, पर अब तो अन्त समय है। (आँखों में आंसू भरकर) मेरे तो भाग्य फूट गए। (ज़ोर से सिर पर हाथ मारती है।)

सिद्धेश्वर : जब तक साँस तब तक आस। डॉक्टर को तो अवश्य दिखाना चाहिए, बाकी जैसी आपकी इच्छा। मैं तैयार हूँ, हालाँकि मैं अभी बाहर से आ रहा हूँ।

सरोजिनी : प्राण अटक रहे हैं।

सिद्धेश्वर : इतने धनी आदमी थे। हो सके तो कुछ दान-पुण्य पूजा पाठ करा दीजिए। इसमें कोई सन्देह नहीं, अवस्था ठीक नहीं है।

चन्द्रिका : अम्मा, दान-पुण्य करा दो। बापू की हालत खराब है।

सरोजिनी : क्या कहा जा सकता है? मुरदे भी जी उठते हैं। मैंने वैद्य जी का दिया हुआ रस पिलाया है। एक बार बीमारी में इसी से ठीक हुए थे।

सिद्धेश्वर : कौन सा रस?

सरोजिनी : कई रस मिले हुए हैं। नाम तो याद नहीं। (निकालकर दिखाती है)

सिद्धेश्वर : जैसी आपकी इच्छा। अवस्था तो सचमुच खराब है।

सरोजिनी : पण्डित कोई मिल जाए तो गीता सुना दे। क्या लेगा?

सिद्धेश्वर : यह तो मैं कह नहीं सकता। यत्न करके देखता हूँ, कोई मिल जाये तो। लेगा क्या, यही एक-दो रुपये। अच्छा लाइये मैं ही गीता सुना देता हूं। इस समय तो सेवा करनी ही चाहिए। एक बात है, इनको आप ज़मीन पर उतार दीजिए।

सरोजिनी : मैं अकेली कैसे उतारूँ? कृपा तो बेहोश है। अभी रहने दो।

सिद्धेश्वर : ठहरिए मैं कपड़े बदल आऊँ। गीता भी लेता आऊँगा।

सरोजिनी : न हो, एक डॉक्टर को बुला दीजिए न।

सिद्धेश्वर : अच्छी बात है, लाता हूँ। (चला जाता है)

सरोजिनी : (अपने-आप) चाबी नहीं मिली। (चन्द्रिका से) चन्दो, तूने चाबी नहीं देखी?

चन्द्रिका : मैं क्या जानूँ अम्मा? सवेरे से मैंने तो देखी नहीं है।

[अम्बिका,दीनानाथ और वंशीधर का प्रवेश]

अम्बिका : कैसी तबीयत है? सवेरे तो ठीक थी। एकदम क्या हो गया?

सरोजिनी : न मालूम। मैं तो तुम्हारे घर थी। आकर देखा तो बेहोश पड़े हैं। मैं तो घबरा गई हूँ भैया !

दीना नाथ : मुँह से लार बह रही है। आँखें बिल्कुल बंद हैं। मुझे तो अन्त दिखाई देता हे। यह ठीक है मेरी इनके साथ कभी नहीं पटी, सदा हम दोनों अलग-अलग रहे, पर हममें प्रेम सदा से रहा। और मेरे पास मकान होता तो क्या इन्हें अम्बिका के यहां ठहरने देता? अपने घर पर ही ठहराता। (चिल्लाकर) मुझे मालूम होता कि भाई इतनी जल्दी चले जायेंगे तो हाय मैं कुछ दिन तो सेवा कर ही लेता। बेटी चन्दो, अब तेरा मेरे सिवाय कौन है? तू मेरी बेटी है। हाय, एकदम क्या हो गया?

अम्बिका : मामला ज़रा टेढ़ा होता जा रहा है। मुझे तो कुछ भी नहीं कहना। दूर के सही, पर आखिर भाई तो मेरे भी थे। और जब यह मेरे घर आकर ठहरे तो मुझे अपना समझकर ही तो ठहरे।

दीना नाथ : सो तो है ही। तुम्हें और मुझे सदा अपना ही समझो। और समझते क्यों नहीं? क्या हम लोग पराये थे? अपने थे, तभी बर्मा से रिटायर होकर यहाँ आये। भारतवर्ष में क्या और जगह नहीं हैं? बड़े-बड़े शहर हैं, उनमें होटल हैं, धर्मशालाएँ हैं। जब उन्हें हमारा यह नगर पसंद था, तभी तो यहाँ आये। कहते क्यों नहीं अम्बिका?

अम्बिका : सो तो है ही। पर मुझे तुमसे अधिक अपना निकट सम्बन्धी समझा, तभी

तो मेरे यहाँ ठहरे। यह ठीक है खाया उन्होंने अपना, पहना अपना, पर मकान तो मेरा है। और जगह क्यों नहीं ठहर गए?

[सिद्धेश्वर का प्रवेश]

सिद्धेश्वर : डॉक्टर तो मिला नहीं, कह आया हूँ उसके कम्पाउण्डर से कि मरीज़ों को देखकर लौटते ही उसे भेज देना। पता बता दिया है। (देखकर) अवस्था वैसी ही है। फिर भी गीता सुनाने में कोई हर्ज़ नहीं है। मैं इनके पास बैठकर गीता। पढ़ता हूँ। ज़रा कोई आसन हो तो मंगा दो। ईश्वर इनकी आत्मा को शान्ति दे।

[चन्द्रिका आसन लाकर देती है। सिद्धेश्वर स्वयं पानी लेकर हाथ-पैर धोकर बैठ जाता है और गीता-पाठ करता है।]

दीनानाथ : यह निश्चित है कि इनका अन्त काल आ गया है। इसके पहले हम लोग और तैयारी करें। क्यों भाई अम्बिका?

अम्बिका : यह भी कोई कहने की बात है? ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे। बेटी चंद्रो, अब तुम्हें यहीं रहना है। मैंने सोचा है जैसे मेरे चार बच्चे हैं वैसे ही एक और है। अब तो मैं ही इसकी ब्याह-शादी करूँगा। और मुझे कमी ही क्या है। भाई की आत्मा को कष्ट थोड़े ही होने दूँगा। आखिर यह भी तो मेरी आत्मा है। भगीरथी, अरी भगीरथी, कहाँ गई?

[भगीरथी आती है]

भगीरथी : क्या है?

अम्बिका : देख, एक चार-पाँच सेर गेहूँ और दो सेर चावल तो ला। आखिर भैया ऐसे थोड़े ही जायेंगे। कुछ दान-पुण्य भी तो करना है।

सरोजिनी : आप क्यों कष्ट करते हैं? मैं रुपये देती हूँ, मंगा लो।

[जेब से निकालने लगती है, पर दो रुपये निकलते हैं। फिर ताली का गुच्छा ढूँढ़ती है। जब नहीं मिलता तो राय साहब की खाट के पास जा सिराहने देखती है। इतने में झपट कर दीनानाथ तकिये के पीछे से चाबी का गुच्छा निकाल लेता है। अम्बिका दौड़कर दीनानाथ के हाथ से छीनने लगता है।]

दीनानाथ : यह क्या करते हो, अम्बिका? रहने दो न।

अम्बिका : गुच्छा मेरे पास रहना चाहिए, समझे? राय साहब मेरे पास ठहरे थे .

दीनानाथ : (अम्बिका से गुच्छा छीनता हुआ) यह कैसे हो सकता है? भाई तो आखिर मेरे थे। तुम तो दूर के सम्बन्धी हो।

सरोजिनी : यह तो बड़ी जबरदस्ती है। मेरे हाथ से तुम दोनों ने गुच्छा छीन लिया । ओ कृपा, अरे कृपा, देख तो उठ।

[गुच्छा अम्बिका के हाथों में आ जाता है। वह उसे जेब में रख लेता है। कृपा उठता है और क्षण भर में सारी परिस्थिति को ताड़कर अलमारी में रखे कैश-बॉक्स को बगल में रख लेता है।]

कृपानाथ : (चिल्लाकर) आखिर यह क्या हो रहा है? गुच्छा कहाँ है, सरोजिनी बहन?

सरोजिनी : देख तो, राय साहब के तकिए के नीचे से गुच्छा निकालते हुए मेरे हाथ से दोनों ने छीन लिया है। आज इनके यह रिश्तेदार बन गए हैं।

[गीता-पाठ हो रहा है]

अम्बिका : सुनो, कृपा यह कैश-बॉक्स यहीं रख दो, समझे? नहीं तो मुझे दूसरी कार्यवाही करनी पड़ेगी।

दीनानाथ : (अम्बिका से) मैं भी तो सुनूँ, तुम्हारा मुझसे गुच्छा छीनने का क्या अधिकार है, सीधी तरह से गुच्छा दे दो, नहीं तो खून खराबी हो जायेगी।

[भगीरथी दो बर्तनों में गेहूँ-चावल लाकर रख देती है]

अम्बिका : (कृपा से) तुम यहाँ से एक चीज़ भी नहीं ले जा सकते, समझे? भगीरथी बुला तो ला किशन को। देखूँ, कैश बॉक्स कैसे हथियाते हैं। खिलायें हम, रखें हम, प्यार करें हम, सेवा करें हम, दान-पुण्य करें हम और माल ले जायें ये, जो उनके कुछ भी नहीं है, नौकरों की तरह जिन्हें रखा, आज वे उनके सगे बन गए। रख दो कैश-बॉक्स।

[कृपा से छीनने दौड़ता है। दोनों कैश बॉक्स के लिए लड़ते हैं। वंशीधर

अम्बिका की जेब से गुच्छा निकालकर दीनानाथ का दे देता है। भगीरथी गेहूँ-चावल छोड़कर वंशीधर को पकड़ लेती है। सरोजिनी हैरान होकर देखती है। कृपा कैश-बॉक्स को दबाकर बैठ जाता है। अम्बिका छुड़ाने का यत्न करते-करते उसे मारने लगता है। इसी संघर्ष में अम्बिका गर्दन पकड़कर कृपा के सिर को कैश-बॉक्स से टकरा देता है। कृपा अम्बिका को पकड़कर नीचे गिरा देता है।]

कृपानाथ : खून पी लूँगा, जो ज़रा भी चीं-चपड़ की। आए माल लेने। जन्म भर सेवा हमने की, माल यह लेंगे।

सरोजिनी : अम्बिका, दीननाथ, सुनो, यह तुम लोगों की बड़ी ज़्यादती है जो तुम लड़ रहे हो। उस समय तुम कहाँ थे, जब मेरी बहन मरी थी। ऐसा प्रेम था तो उस समय दूसरा ब्याह करा देते। मुझे कुछ नहीं चाहिए – पर लड़की को तो चाहिए। असली मालकिन तो वही है। मैं तो जैसे पहले थी, वैसे ही अब भी गुज़ारा कर लूँगी।

कृपानाथ : सब गलत बात है। मैं एक पैसा भी किसी को न लेने दूँगा, समझे? खून कर दूँगा। एक-एक को देख लूँगा। देखूँ कौन आता है मेरे सामने ? (आस्तीन चढ़ाकर खड़ा हो जाता है।)

भगीरथी : (कृपा से) तेरी इतनी हिम्मत कि तू अनाप-शनाप बके। जीभ खींच लूँगी, मरे!

सरोजिनी : तो वह क्यों दूसरों का माल हथियाना चाहता है?

सिद्धेश्वर : (गीता पढ़ते हुए) बड़े दुःख की बात है। एक प्राणी कष्ट में है, और आप लोग उसकी अवस्था में दुःखी होना तो दूर, आपस में उसके पैसे के लिए लड़ रहे हैं। कितनी शरम की बात है।

दीनानाथ : (कृपा से) यदि तू समझता है कि तू जवान है और बलवान है तो याद रखियो, मैं भी कम नहीं हूँ। मैंने तेरे जैसे बहुत देखे हैं। रोज़ ऐसे चरकटों को चराना मेरा काम है। सीधी तरह कैश-बॉक्स दे दे, नहीं तो ठीक नहीं होगा। वंशीधर, क्या देख रहा है? ये साले मुफ़्तखोर माल ले जायें और हम टापते रहें।

[वंशीधर कृपा से लिपट जाता है। दोनों गुत्थम-गुत्था हो जाते हैं। लड़ते-लड़ते दोनों के चोटें आती हैं। कभी कृपा, कभी वंशीधर ऊपर-नीचे होते रहते हैं। दीनानाथ अम्बिका को बाहर ले जाकर एकान्त में बातें करके लौटता है। फिर दोनों कृपा के ऊपर पिल पड़ते हैं, और कैश-बॉक्स छीन लेते है। कृपा के सिर से खून निकलने लगता है। दोनों आदमी कृपा के हाथ पैर बाँधकर दूसरे कमरे में बन्द कर देते हैं। सरोजिनी और चन्द्रिका चिल्लाने लगती हैं। सिद्धेश्वर पूजा छोड़कर बीच बचाव कराता है। फिर पूजा पर बैठ जाता है।]

सिद्धेश्वर : भाइयों, मनुष्य से बढ़कर रुपये नहीं है तुम लोगों को राय साहब से प्रेम नहीं हैं, उनकी आत्मा अभी तक कष्ट में है, प्राण निकल रहे हैं, और तुमने रुपये के लिए हाथा-पाई, आपा-धापी शुरू कर दी। बड़ा खेद है।

चन्द्रिका और सरोजिनी : हाय लूट लिया रे। बचाओ कोई।

[भगीरथी दौड़कर बाहर का द्वार बन्द कर आती है।]

सरोजिनी : वाही-तबाही मत बको। नहीं तो राय साहब को फूँकने से पहले तुमको खत्म कर देना होगा, समझे? सिद्धेश्वर जी, ज़रा सुनिए। (उसे उठाकर ले जाता है। उसे घर से बाहर निकालकर) बस, अब ठीक हो गया।

अम्बिका : न जाने कहाँ से दोनों कमीने इकटठे हो गए हैं। और (सरोजिनी से) तू किस बूते पर रुपये माँग रही है? क्या तू इसकी औरत थी?

भगीरथी : भला देखो तो, आदमियों के मुँह लगती है।

सरोजिनी : मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा। मैं तो यह कहती हूँ यदि तुम्हें लेना था तो उनके सामने लेते।

दीनानाथ : देखो, किसी को हमारे बीच में बोलने की ज़रूरत नहीं है। आपस का मामला है, हम निबट लेंगे। सरोजिनी भी हमारी है। अम्बिका, इस झगड़े से तो अच्छा है कुछ फैसला हो जाय।

अम्बिका : मुझे कोई ऐतराज़ नहीं।

दीनानाथ : तो सुनों, पहले देखो कितना रुपया है। हम कुछ सरोजिनी को भी दे देंगे। आखिर इसने जो इतने दिन सेवा की है तो इसका भी कुछ भाग होना ही चाहिए।

अम्बिका : ठीक है। मैं कब इसका विरोध करता हूँ? दो हिस्से हम दोनों के, एक हिस्सा सरोजिनी का।

दीनानाथ : मंजूर है, क्यों सरोजिनी?

वंशीधर : (ऊपर से झाँककर) डॉक्टर आया है।

[सरोजिनी कुछ नहीं बोलती। बाहर से दरवाज़े पर किसी की आवाज़ आती हैं।]

अम्बिका : डॉक्टर से कह दो अब देखने की आवश्यकता नहीं है। काम समाप्त हो गया।

दीनानाथ : कह दो जाकर। (भगीरथी दौड़कर जाती है)

सरोजिनी : डॉक्टर को बुलाया है तो उसे देख लेने दो। मैं उसे बुलाऊँगी।

दीनानाथ : ठहरो! कोई ज़रूरत नहीं है डॉक्टर की। अब खेल खत्म हो गया है। वंशीधर, जा डॉक्टर से कह दे।

सरोजिनी : नहीं, डॉक्टर को देखना चाहिए। मैं लाती हूँ।

अम्बिका : तू नहीं जा सकती वंशीधर, रोक इसे।

भगीरथी : (कमरे में आकर) डॉक्टर गया। मैंने उससे कह दिया।

सरोजिनी : (विवश भय से चीखकर फर्श पर गिर जाती हैं) हाय, लूट लिया। मार डाला !

[चन्द्रिका सरोजिनी से लिपट जाती है। अम्बिका और दीनानाथ गुच्छा निकालकर कैश-बॉक्स खोलने लगते हैं। इसी समय राय साहब आँखें खोल देते हैं।]

राय साहब: बस, हाथ मत लगाना। रख दो चाबी।

[सब आश्चर्य और भय से जड़वत् खड़े रहते हैं। सरोजिनी चन्द्रिका

जमीन में आधी उठी हुई देखती हैं। दीनानाथ के हाथ से चाबी का गुच्छा गिर जाता है। अम्बिका एक कोने में खड़ा हो जाता है। भगीरथी सिर नीचा किए बाहर निकल जाती है।]

राय साहब : (कृपा को कमरे से निकालकर, सरोजिनी से) उठो, हम लोग इस मकान में अब एक क्षण भी न रहेंगे। उठो।

दीनानाथ और अम्बिका : भाई साहब, तुम तो मर गए थे? यह पाखंड?

राय साहब : मैं मरा नहीं, अभी ज़िन्दा हूँ। तुम्हारी परीक्षा ली थी। आज मेरी आँखें खुल गईं। मुझे मालूम हो गया, कौन कितने पानी में है। मैं तुम्हारा भाई भी नहीं। मैं वापस बर्मा जाऊँगा। चलो सरोजिनी, चन्द्रिका।

[सरोजिनी, चन्द्रिका और राय साहब सामान लेकर खड़े होते हैं।]

[यवनिका]

शब्दार्थ

चरकटा – ऊँट, हाथी आदि के लिए चारा काटकर लाने वाला

यवनिका – नाटक का पर्दा

आस्तीन – सिले कपड़े का बाँह का भाग

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :

1. 'वापसी' एकांकी का प्रमुख पात्र कौन है? स्पष्ट करते हुए उसका चरित्र चित्रण करें।
2. वापसी एकांकी का नामकरण कहाँ तक सार्थक है? स्पष्ट करें।
3. वापसी एकांकी से क्या शिक्षा मिलती है, अपने शब्दों में लिखो।
4. निम्नलिखित का चरित्र चित्रण करें –

   क) सिद्धेश्वर

   ख) राय साहब

(ख)   लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :

5. 'वापसी' एकांकी का सार लिखो।

6. 'वापसी' एकांकी श्री उदय शंकर भट्ट का मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन पर एक व्यंग्य है, व्याख्या करें।

7. सिद्धेश्वर के चरित्र के द्वारा लेखक मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहता है, कैसे?

(ग)   सप्रसंग व्याख्या करें :

8. देखूँ कैश बॉक्स कैसे हथियाते हैं। खिलाएँ हम, रखें हम, प्यार करें हम, सेवा करें हम, दान पुण्य करें हम और माल ले जायें ये, जो उनके कुछ भी नहीं, नौकरों की तरह जिन्हें रखा, आज वे उनके सगे बन गए।

9. बड़े दुख की बात है। एक प्राणी कष्ट में है, और लोग उसकी अवस्था से दुखी होना तो दूर, आपस में उसके पैसे के लिए लड़ रहे हो।

10. मैं मरा नहीं, अभी ज़िन्दा हूँ। तुम्हारी परीक्षा ली थी। आज मेरी आँखें खुल गईं। मुझे मालूम हो गया, कौन कितने पानी में है। मैं तुम्हारा भाई भी नहीं। मैं वापिस बर्मा जाऊँगा।

*****

26. जगदीश चन्द्र माथुर

जगदीश चन्द्र माथुर का जन्म सन् 1917 में शाहजहाँपुर में हुआ। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। उसके पश्चात् आई.सी.एस की परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी में नियुक्त हुए तथा कुछ वर्षों तक आकाशवाणी में महानिदेशक के पद पर आसीन रहे ।

बचपन से ही नाटकों में रुचि होने के कारण स्कूल, कॉलेज के सांस्कृतिक उत्सवों में नाट्य लेखन, निर्देशन और अभिनय करते रहे। आगे चलकर उनका यही शौक सृजन में परिणत हो गया।

माथुर जी के नाटकों में विविधता है। ऐतिहासिक नाटकों के साथ साथ उन्होंने सामाजिक समस्याओं से जुड़े एकांकी नाटक लिखे हैं। माथुर जी को रंगमंच की तकनीक पर पूरा अधिकार था। इसी कारण इनके सभी एकांकी रंगमंच पर सफल रहे हैं।

प्रमुख कृतियाँ : कोणार्क, दशरथ नंदन, शारदीय, पहला राजा आदि उनके नाटक हैं। भोर का तारा, ओ मेरे सपने इनके प्रसिद्ध एकांकी संग्रह हैं।

सन् 1978 में इनका देहान्त हो गया।

पाठ परिचय

'**रीढ़ की हड्डी**' जगदीशचन्द्र माथुर का प्रसिद्ध सामाजिक एकांकी है। आधुनिक समाज में लड़की की क्या स्थिति है? विशेषकर शादी विवाह के लिए लड़की देखने के समय लड़के वालों की मानसिकता तथा लड़की के माँ-बाप की स्थिति को लेखक ने बहुत ही अच्छी तरह से चित्रित किया है। स्त्री समाज रूपी की रीढ़ की हड्डी है - आधार है- लेकिन आज नारी की उपेक्षा सामाजिक विसंगतियों का कारण है। 'रीढ़ की हड्डी' शील और चरित्र का भी पर्याय है लेकिन आज के युवक समाज में इसकी दिन-ब-दिन आ रही कमी भी चिन्ता का विषय है। शंकर का लड़कियों के होस्टल में ताँक-झाँक करना और नौकरानी के पैरों में पड़कर मुँह छिपाकर भागना उसकी चरित्रहीनता व कायरता का परिचय देता है लेकिन वहीं शंकर अपने पिता गोपाल प्रसाद के साथ उमा में हर गुण देखना चाहता है बिल्कुल वैसे ही जैसे एक खरीददार

किसी वस्तु को खरीदने से पहले करता है। उमा के सशक्त चरित्र के माध्यम से माथुर जी नारी सशक्तिकरण का संदेश भी देना चाहते हैं। उमा का यह कहना कि 'अब मुझे कह लेने दीजिए बाबू जी' एक वैचारिक क्रान्ति के आने का सूचक है और उमा का कहना 'इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होते? क्या उनके चोट नहीं लगती?' युवक समाज के ऊपर एक करारा व्यंग्य है। अत: 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी आज के समाज का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करती है – एकांकी के अन्त में उमा का आक्रोश व सिसकियाँ, उमा के माँ–बाप का हताश होना व शंकर और उसके पिता गोपाल प्रसाद की बेबसी और रूलासापन पाठक को कुछ सोचने पर विवश करता है। पाठक को कुछ सोचने पर विवश करने में लेखक की सफलता – समाज में होने वाले एक अच्छे परिवर्तन की आशा है।

रीढ़ की हड्डी

पात्र

उमा	–	लड़की
रामस्वरूप	–	लड़की का पिता
प्रेमा	–	लड़की की माँ
शंकर	–	लड़का
गोपाल प्रसाद	–	लड़के का पिता
रतन	–	नौकर

मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के एक दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं, तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है ।

बाबू : अबे धीरे-धीरे चल.... अब तख्त को उधर मोड़ दे... उधर। ....बस, बस ।

नौकर : बिछा दूँ, साहब?

बाबू : (ज़रा तेज़ आवाज़ में) और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ जब अक्ल बंट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या? .....बिछा दूँ सा'ब! ....और यह पसीना किस लिए बहाया है?

नौकर : (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू : हँसता क्या है? .....अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज़ है? ....उसे सीधा कर...यों, हाँ बस। .....और सुन, बहू जी से दरी माँग ला, इसके

ऊपर बिछाने के लिए चद्दर भी, जो कल धोबी के यहाँ से आई है, वही।

(नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच मेज़पोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं।)

सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती है। गंदमी रंग, छोटा कद। चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त है . उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है - खाली हाथ। बाबू साहिब.... (रामस्वरूप दोनों की तरफ देखने लगते हैं....)

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में..... ।

रामस्वरूप : धोती?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, फिर न जाने किस लिए....

रामस्वरूप : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन

रामस्वरूप : क्यों वे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या? मैंने कहा था-धोबी के यहाँ से जो चद्दर आई है, उसे माँग ला- अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ ? उल्लू कहीं का।

प्रेमा : अच्छा, जा, पूजा वाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं न? उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।

रतन : और दरी?

प्रेमा : दरी यहीं तो रखी है, कोने में। वह पड़ी तो है।

रामस्वरूप : (दरी उठाते हुए) और बीवी जी के कमरे से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी। ....जल्दी जा।

(रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।)

प्रेमा : लेकिन तुम्हारी लाडली बेटी मुँह फुलाये पड़ी है।

रामस्वरूप : मुँह फुलाये?....और तुम उसकी माँ किस मर्ज़ की दवा हो? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये हैं। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाये तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा : मैं क्या करूँ?सारे जतन करके तो हार गई। तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखा कर इतना सिर चढ़ा रखा है। मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं। अपना जमाना अच्छा था। 'आ, ई' पढ़ लो, गिनती सीख लो और बहुत हुआ तो 'स्त्री सुबोधिनी' पढ़ लो। सच पूछो तो 'स्त्री सुबोधिनी' में ऐसी ऐसी बातें लिखी हैं- ऐसी बातें कि तुम्हारी बी. ए. एम. ए. की पढ़ाई भी क्या होगी। और आजकल के लच्छन ही अनोखे हैं।

रामस्वरूप : ग्रामोफ़ोन बाजा होता है न?

प्रेमा : क्यों?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चला कर जब चाहे रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी। तुम्हें ठिठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो क्या हुआ?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था ज़रा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी सुन्दर हो, बिना टीप-टाप के भला कौन पूछता है? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रखा था। पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जन्म की नफरत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेट कर लेट गई। भई, मैं तो बाज़ आई तुम्हारी इस लड़की से।

रामस्वरूप : ना जाने कैसा दिमाग है। वरना आजकल की लड़कियों के सहारे

तो पौडर का कारोबार चलता है।

प्रेमा : अरे, मैंने तो पहले ही कहा था। इन्टर ही पास करा देते-लड़की अपने हाथ में रहती और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती! पर तुम तो ....

रामस्वरूप : (बात काट कर) चुप, चुप।.... (दरवाज़े में झाँकते हुए) तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब कुछ उगले जा रही हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी।

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्ज़ी हो, करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

रामस्वरूप : तो उमा को ऐसे ही तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और नाश्ता तो तैयार है न? (रतन का आना) आ गया रतन? .... इधर ला, इधर बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल.... पकड़ो तो ज़रा इधर से।

(चद्दर बिछाते हैं)

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायेंगे नहीं। कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं। फल रखे ही हैं। चाय तैयार है, और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन तो आया ही नहीं।

रामस्वरूप : क्या कहा? मक्खन नहीं आया? तुम्हें भी किस वक्त याद आई है। जानती हो कि मक्खन वाले की दुकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का सारा काम करे। दफ्तर के चपरासी ने कहा था आने के लिए, सौ नखरों के मारे....

प्रेमा : यहाँ के काम कौन ज्यादा हैं? कमरे तो सब ठीक-ठाक हैं ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रखा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज़ खुद ले आना ।

इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयेगा। दो आदमी ही तो हैं ?

रामस्वरूप : हाँ, एक तो बाबू गोपालदास और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि ज़रा सादगी से आये। वे लोग ज़रा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है, इनके दकियानूसी ख्यालों पर। खुद पढ़े-लिखे है, वकील हैं, सभा-सोसाइटियो में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं, ऐसी कि ज्यादा पढ़ी लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का?

रामस्वरूप : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी.एस.सी. के बाद लखनऊ में ही पढ़ता है मैडिकल कॉलेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ, मज़बूरी है। मतलब अपना है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी कोरी सुनाता कि ये भी ....

रतन : (जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबू जी, बाबू जी।

रामस्वरूप : क्या है?

रतन : कोई आ रहे हैं?

रामस्वरूप : (दरवाज़े से बाहर झाँक कर जल्दी मुँह अन्दर करते हैं।) अरे, प्रेमा वे आ भी गये। (नौकर पर नज़र पड़ते ही) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ गया नहीं मक्खन लाने?..... सब चौपट कर दिया। अबे उधर से नहीं, अन्दर के दरवाज़े से जा। (नौकर अन्दर जाता है) ....और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना - थोड़ा-सा गा देगी।

(प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ जाती है। उनकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे में अटक जाती है।)

प्रेमा : ऊँह। यह बाजा नीचे ही रख गया है - कमबख्त।

रामस्वरूप : तुम जाओ मैं रखे देता हूँ। जल्दी।

(प्रेमा जाती है। बाबू राम स्वरूप बाजा उठा कर रखते हैं। किवाड़ पर दस्तक)

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। आइए, आइए। .... हँ-हँ-हँ।

(बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफी अनुभवी महाशय हैं। आवाज़ पतली है और खिसियाहट भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।)

रामस्वरूप : (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए,

(बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।)

रामस्वरूप : यह बेंत। .....लाइए मुझे दीजिए। (कोने में रख देता है। सब बैठते हैं) हँ-हँ..... मकान ढूंढ़ने में कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई?

गोपाल प्रसाद : (खंखारकर) नहीं ताँगे वाला जानता था। और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं?

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ़ दी....

गोपाल प्रसाद : अरे नहीं साहब। जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है, बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी !

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके हँ-हँ सेवक हैं। हँ-हँ (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू कितने दिनों के लिए छुट्‌टियाँ हैं?

शंकर : जी कॉलेज की तो छुट्‌टियाँ नहीं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

रामस्वरूप : तो आपके कोर्स खत्म होने में अब साल भर रहा होगा?

शंकर : जी, यही कोई साल दो साल?

रामस्वरूप : साल दो साल?

शंकर : हँ-हँ-हँ ...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ ......

गोपाल प्रसाद : बात यह है साहब कि शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बतायें इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी की वैसी ही भूख।

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं।

गोपाल प्रसाद : जनाब, यह था कि चार पैसे में ढेर सी मिठाई आती थी। और अकेले दो आने को हज़म करने की ताकत थी, अकेले। और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह ही होते हैं स्कूलों में। तब न कोई वॉली-वाल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मज़ाल कि कोई कह जाए कि यह लड़का कमज़ोर है।

(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं।)

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ। उस ज़माने की बात ही दूसरी थी। हँ-हँ-हँ।

गोपाल प्रसाद : (जोशीले आवाज़ में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे तो बारह घंटे की 'सिटिंग' हो जाती थी, बारह घंटे । जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेज़ी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम.ए भी मुकाबला नहीं कर सकते ।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ! यह तो है ही।

गोपाल प्रसाद : माफ कीजिएगा, बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती हैं, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। ......जी हाँ, वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना, हँ-हँ-हँ (शंकर भी ही-ही करता है।)

गोपाल प्रसाद : (एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए) अच्छा तो

साहब, फिर 'बिजनेस' की बातचीत हो जाये।

रामस्वरूप : (चौंककर) 'बिजनेस' बिज.... (समझकर) ओह.... अच्छा, अच्छा। लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए।

(उठते हैं।)

गोपाल प्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ करते हैं?

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ। तकल्लुफ किस बात का? हँ-हँ? यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये। वरना मैं किस काबिल हूँ। हँ-हँ माफ कीजिएगा। ज़रा। अभी हाज़िर हुआ।

(अन्दर जाते हैं।)

गोपाल प्रसाद : (थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में) आदमी तो भला है, मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है?

शंकर : जी.......

(कुछ खंखार कर इधर-उधर देखता हैं।)

गोपाल प्रसाद : क्यों क्या हुआ?

शंकर : कुछ नहीं।

गोपाल प्रसाद : झुककर क्यों बैठते हो? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो, तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'....(इतने में बाबू रामस्वरूप आते है, हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए। मेज़ पर ट्रे रख देते है।)

गोपाल प्रसाद : आखिर आप माने नहीं।

रामस्वरूप : (चाय प्याले में डालते हुए) हँ-हँ-हँ। आप को विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी?

गोपाल प्रसाद : नहीं, नहीं साहब, मुझे आधा कप दूध और आधी चाय दीजिए। और ज़रा चीनी ज्यादा डालिएगा। मुझे तो भाई, यह नया फैशन पसंद नहीं। एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाये तो ज़ायका क्या रहेगा?

रामस्वरूप : हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं।

(प्याला पकड़ाते हैं।)

शंकर : (खँखार कर) सुना है, सरकार अब ज़्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगायेगी।

गोपल प्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

रामस्वरूप : (शंकर को प्याले पकड़ाते हुए) वह क्या?

गोपाल प्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स। (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब, कि देने वाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाये कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैण्डर्ड' के अनुसार अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

रामस्वरूप : (ज़ोर से हँसते हुए) वाह-वाह। खूब सोचा आपने। वाकई आजकल वह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं) लीजिए।

गोपाल प्रसाद : (समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

रामस्वरूप : (शंकर की तरह मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शंकर बाबू?

शंकर : किस मामले में?

रामस्वरूप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए ।

गोपाल प्रसाद : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आप से पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना अति आवश्यक है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरा लगाये चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम-आप मान भी जायें, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है?

रामस्वरूप	:	जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।
गोपाल प्रसाद	:	देखना क्या? जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।
रामस्वरूप	:	हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी एहसान है। हँ-हँ।
गोपाल प्रसाद	:	और ज़ायचा (जन्मपत्री) तो मिल ही गया होगा।
रामस्वरूप	:	जी, ज़ायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है? ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, स्वयंमेव मिला हुए समझिए।
गोपाल प्रसाद	:	यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो गलत है न?
रामस्वरूप	:	(चौंककर) क्या?
गोपाल प्रसाद	:	यही पढ़ाई लिखाई के बारे में। ...जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उसके नखरों को। बस हद-से-हद मैट्रिक पास होनी चाहिए... क्यों शंकर?
शंकर	:	जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।
रासस्वरूप	:	नौकरी का तो सवाल ही नहीं उठता।
गोपाल प्रसाद	:	और क्या साहब। देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़कों को बी. ए., एम. ए. तक पढ़ाया है। तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है? अरे, मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। मगर औरतें भी वहीं करने लगे, अंग्रेजी अख़बार पढ़ने लगें और 'पॉलिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगें तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं शेरनी के नहीं।
रामस्वरूप	:	जी हाँ, और मर्द की दाढ़ी होती है, औरतों की नहीं ....।

(शंकर भी हँसता है, मगर गोपाल प्रसाद गम्भीर हो जाते हैं।)

गोपाल प्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का अभिप्राय यह है कि कुछ बातें संसार में ऐसी हैं जो केवल मर्दों के लिए हैं और ऊँची शिक्षा भी ऐसी ही चीज़ों में से एक है।

रामस्वरूप : (शंकर से) चाय और लीजिए।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामवस्वरू : (गोपाल प्रसाद से) आप?

गोपाल प्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म कीजिए।

रामस्वरूप : आपने तो कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बतायें, वह मक्खन..........

गोपाल प्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ-हँ (मेज़ को एक तरफ सरका देते हैं। फिर अन्दर के दरवाज़ें की तरफ मुँहकर ज़रा ज़ोर से) अरे ज़रा पान भिजवा देना....।

(पान की तशतरी हाथों में लिए उमा आती है। सादगी के कपड़ें। गर्दन झुकी हुई। बाबू गोपाल प्रसाद आँखें गढ़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं।)

रामस्वरूप : हँ-हँ!.... यही हँ-हँ आपकी लड़की है। लाओ बेटी, पान मुझे दो।

(उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिमवाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटी चौंक उठते हैं।)

गोपाल प्रसाद और शंकर : (एक साथ) चश्मा।

रामस्वरूप : (ज़रा सकपका कर) जी, वह तो- वह- पिछले महीने इसकी आँखें दुखनी आ गई थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपाल प्रसाद : हूँ। पढ़ाई-पढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैनें अर्ज किया न।

गोपाल प्रसाद : हूँ। (संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो, बेटी।

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-वाजे के पास।

(उमा बैठती है।)

गोपाल प्रसाद : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है। हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी और बाजा भी। सुनाओ तो उमा, एकाध गीत सितार के साथ।

(उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरु कर देती है। स्वर से स्पष्ट है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक-साथ रुक जाती है।)

रामस्वरूप : क्यों, क्या हुआ? गाने को पूरा करो उमा।

गोपाल प्रसाद : नहीं, नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

(उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।)

गोपाल प्रसाद : अभी ठहरो, बेटी।

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठे रहो, उमा।

(उमा बैठती है।)

गोपाल प्रसाद : (उमा से) तो तुमने पेंटिंग-वेटिंग भी सीखी है।

(उमा चुप)

रामस्वरूप : हाँ, वह तो मैं आपको बताया भूल ही गया। यह जो तस्वीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इस ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गोपाल प्रसाद : हूँ। यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई बगैरह?

रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्में रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी। हँ-हँ-हँ।

गोपाल प्रसागद : ठीक। लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं?

(उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाए। गोपाल प्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।)

रामस्वरूप : जवाब दो उमा। (गोपाल से) हँ-हँ, ज़रा शर्माती है, इनाम तो इसने....

गोपाल प्रसाद : (ज़रा रूखी आवाज़ में) ज़रा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

रामस्वरूप : उमा, देखो आप क्या कह रहे है। जवाब दो न।

उमा : (हल्की लेकिन, मज़बूत आवाज़ में) क्या जवाब दूँ, बाबू जी।

जब कुर्सी-मेज़ बिकती हैं, तब दुकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, केवल खरीददार को दिखला देता है। पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना-

रामस्वरूप : (चौंक कर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा।

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबू जी। यह जो महाशय मेरे खरीददार बन कर आये हैं, इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता? क्या उनके चोट नहीं लगती? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देखभाल कर खरीदते हैं?

गोपाल प्रसाद : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप आपने मेरी इज्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था?

उमा : (तेज़ आवाज़ में) जीं हाँ, और हमारी बेइज्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं? और ज़रा अपने इस साहबज़ादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे?

शंकर : बाबू जी, चलिए।

गोपाल प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में। ....क्या तुम कॉलेज में पढ़ी हो।

(रामस्वरूप चुप)

उमा : जी हाँ, मैं कॉलेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी.ए पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताँक-झाँक कर कायरता दिखाई है। मुझे अपनी इज्ज़त, अपने मान का ख्याल तो हैं। लेकिन इनसे पूछिए कि किस तरह नौकरानी के पैरों में पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

रामस्वरूप : उमा, उमा।

गोपाल प्रसाद : (खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी.ए.पास है और आपने मुझसे कहा था कि केवल मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए, मेरी छड़ी कहाँ है? मैं चलता हूँ (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं) बी.ए.पास। उफोह। गज़ब हो जाता। झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलें....

(दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं।)

उमा : जी हाँ, जाइए ज़रूर चले जाए। लेकिन घर जाकर ज़रा यह तो पता लगाइएगा कि आपके लाडले बेटे की रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं-यानी बैकबोन, बैकबोन।

(बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम्म से बैठ जातें है। उमा सहसा चुप हो जाती है लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।)

प्रेमा : उमा, उमा।.... रो रही है?

(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।)

रतन : बाबू जी, मक्खन

(सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।)

अभ्यास

(क) लगभग 60 शब्दों में उत्तर दें :-

1. 'रीढ़ की हड्डी' किस का प्रतीक है? इसका अपने शब्दों में वर्णन करें।
2. 'लेकिन घर जाकर ज़रा यह तो पता लगाइए कि आपके लाडले बेटे की रीढ़ हड्डी भी है या नहीं – उमा के इन शब्दों का क्या अर्थ है – स्पष्ट करें ।''
3. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी में लेखक क्या कहना चाहता है? अपने शब्दों में लिखें।
4. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के नाम की सार्थकता अपने शब्दों में लिखें।

(ख) लगभग 150 शब्दों में उत्तर दें :-

5. उमा का चरित्र चित्रण लिखें।
6. 'रीढ़ की हड्डी एकांकी में किस सामाजिक समस्या को छुआ गया है – आपके अनुसार इस समस्या का क्या हल है?
7. 'शंकर' शारीरिक व चरित्र की दृष्टि से रीढ़ की हड्डी से विहीन है, आपका इसके बारे में क्या विचार है – शंकर का चरित्र-चित्रण लिखें।
8. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के पुरुष पात्रों की तीन-तीन चारित्रिक विशेषताएँ लिखें।

(ग) सप्रसंग व्याख्या करें :

1. जनाब मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।
2. जब कुर्सी-मेज़ बिकती है, तब दुकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता केवल खरीददार को दिखला देता है। पसन्द आ गई तो अच्छा है, वरना-
3. जी हाँ, और मेरी बेइज्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप तोल कर रहे हैं?

*****